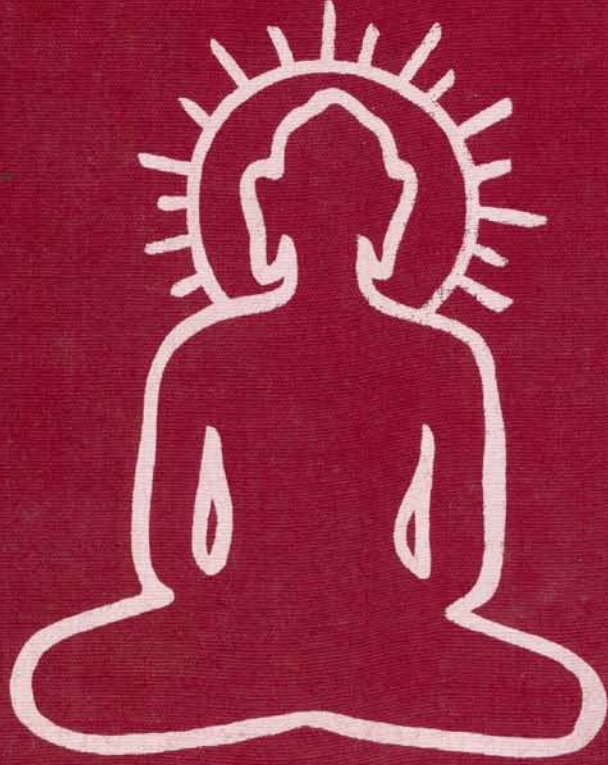


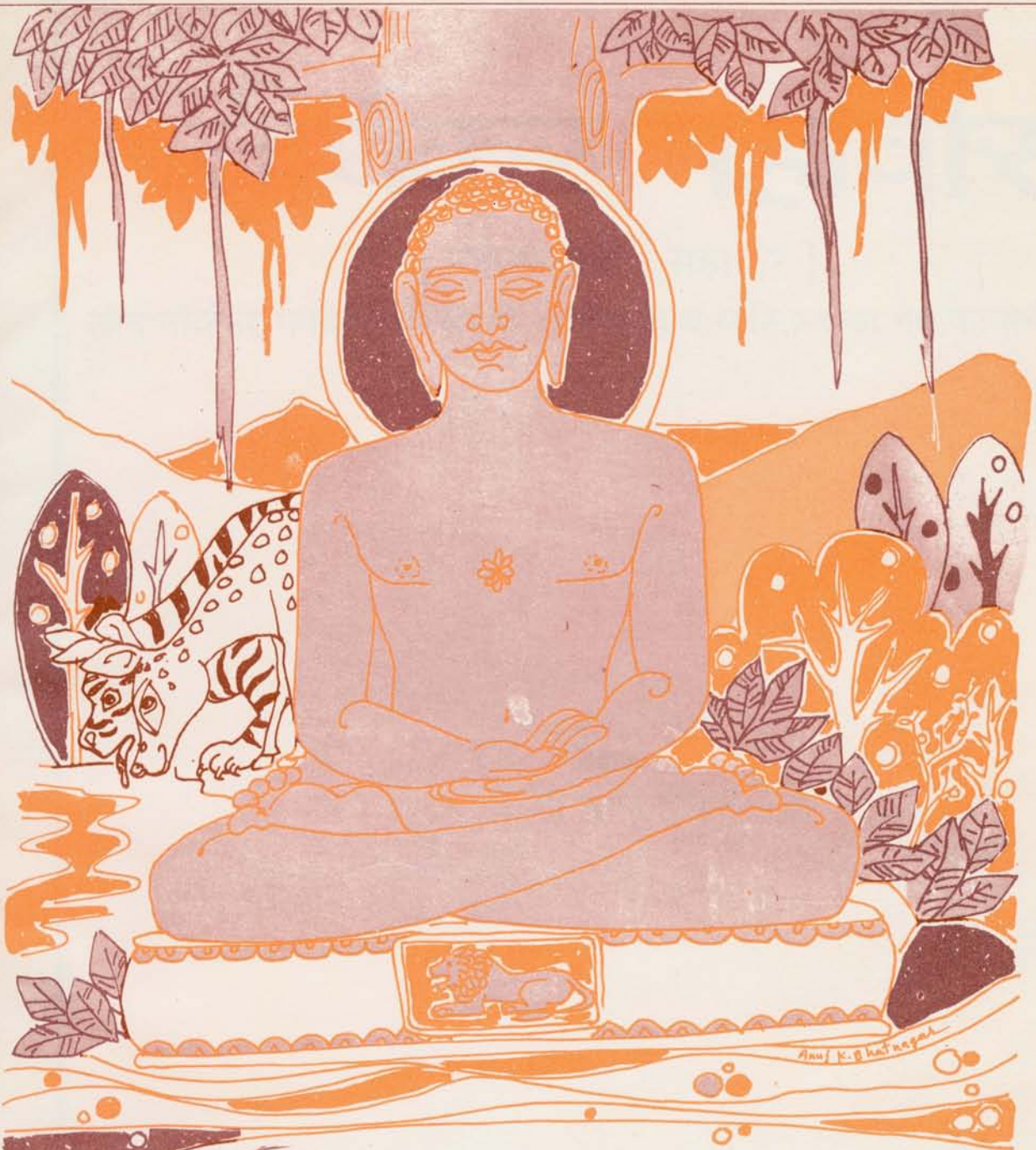
तीर्थंकर
महावीर
[प्रकाश-पर्व महावीर]



गुरुदेव श्री सुभद्र मुनि

यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन

नई दिल्ली-110015



Anu K. G. hatnagal

तीर्थंकर महावीर

[प्रकाश-पर्व : महावीर]

श्री सुमद्रमुनि.

तीर्थंकर महावीर

[प्रकाश-पर्व : महावीर]

(जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर के महनीय दिव्य व्यक्तित्व का गद्य काव्य-रेखांकन)

लेखक :

श्री सुभद्र मुनि

प्रकाशक :

यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन

नई दिल्ली-110 015

प्रकाशन वर्ष : 1998

प्रकाशक :

यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन
बी-137, कर्मपुरा,
नई दिल्ली-110 015

मूल्य : 500.00 रुपये

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

समर्पण

जिन से जीवन पथ पर चलने के लिये नेत्र मिले !

उन

परम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय गुरुमह

श्रमण धर्म के मुकुट

योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज

को

अनन्त आस्था के साथ

—सुभद्र मुनि

काव्य और मैं

भाषा का जब से विकास हुआ, तभी से उसने अपनी रसात्मकता, सम्वेदनशीलता, करुणा और ललित-कोमल शब्दावली के कारण मनुष्य को आकर्षित किया। मनुष्य के लिये यह कौतूहल और आनन्द का विषय था—काव्य की सरिता कैसे मस्तिष्क के कूलों को स्पर्श करती हुई हृदय-प्रदेश पर बहती है? कैसे उस में हृदय के समस्त रस स्वतः प्रकट हो जाते हैं? यही कारण था कि समय-समय पर अनेक शब्द-माधक अनुभूति व अभिव्यक्ति के अनेक मार्गों से होते हुए आनन्द के इस स्रोत तक पहुँचते-पहुँचाते रहे।

मुझे भी काव्य प्रिय रहा। मैं एकांत-विश्रांत पलों में, काव्य पढ़ता, गुनगुनाता। काव्य-रचना का कोई विशेष प्रसंग मेरे जीवन में नहीं बना। अतः इस दिशा में मेरा कार्य रचना के स्तर पर स्वल्प रहा और प्रकाशन की दृष्टि से अत्यल्प। रचना के स्तर पर काव्य के इस रूप में मेरी रुचि कब और कैसे बनी, इसका उल्लेख यहाँ अपेक्षित प्रतीत हो रहा है।

सन् 1977 की बात। परम पूज्य गुरुदेव संघशास्ता श्री रामकृष्ण जी म० का चातुर्मास रोहतक मण्डी में था। गुरुदेव की सेवा में यह सेवक (लेखक) भी था। उस चातुर्मास में मुझे लगभग 10-15 दिन बुखार आया। बुखार ने मुझसे मेरे सभी काम छीन लिये। सारे दिन लेटे रहो, मेरा बस यही एक काम रह गया। विश्राम करते हुए एक दिन सहसा मेरे मानस में एक विचार जागा। मैं उसे गद्य-कविता के रूप में बोलने लगा। उसके स्वर उसी के रूप में मैंने कागज पर उतार लिये। बाद में विचार करने पर अनुभव हुआ कि सम्भवतः यही मेरी प्रथम कविता है, जिसका शीर्षक था— 'नजर'। उन्हीं दिनों लगभग तीस-चालीस गद्य-कवितायें अंकित हुईं। उन में से कुछ अनेक जैन पत्र-पत्रिकाओं व 'पंजाब केसरी', 'नवभारत टाइम्स' आदि राष्ट्रीय दैनिकों में प्रकाशित हुईं। तब मैं 'पारिजात' और 'शुभ', इन दो उपनामों से कवितायें भेजा करता था। प्रकाशित होने पर लगा कि औरों की दृष्टि में ये 'कवितायें' हैं। यही था—काव्य-रचना व प्रकाशन से मेरे परिचय का आरम्भ।

आरम्भ तो हो गया परंतु काव्य और मेरे बीच जो प्रगाढ़ सम्बन्ध-सेतु सम्भावित था, वह बन नहीं सका। परिस्थितियों के दबाव और गुरुदेव श्री के श्रद्धालुओं के आग्रह से मेरा अधिकांश लेखन-कार्य गद्य के रूप में ही हुआ। यूँ मेरा गद्य से कोई विरोध तो था नहीं, जो मैं उसे रोकता। परिणामतः एक के बाद एक, गद्य-कृतियाँ प्रकाशित होती रहीं। काव्य छूट गया...यह तो मैं तब सोचूँ जब वह मुझ में ठीक से उदित हुआ हो। एक प्रसंग फिर घटा।

मेरी गुजराती पढ़ने की रुचि जागी। तब मेरा सम्पर्क प्रोफेसर महेन्द्र भाई दवे से हुआ। गुजराती भाषा के प्रतिष्ठित विद्वान तो वे थे ही परन्तु विशेष यह कि काव्य में भी विशेष रुचि रखते थे। उन्होंने मुझे अपनी छन्द-मुक्त कवितायें दिखाई। मेरे मन में प्रसुप्त काव्याकर्षण पुनः जागृत हो उठा। मैंने भगवान् महावीर के महान् जीवन को काव्य-रूप में आकार देने की गोची। कुछ कवितायें रची गईं। आत्म-विश्वास तो था नहीं। अतः मैंने वे कवितायें प्रोफेसर साहब को दिखायीं। उन्होंने उन्हें पसंद किया। कुछ सुझाव भी दिये। काव्य से मेरे पुराने परिचय का नवीनीकरण हुआ। काव्य से सम्बन्धों का सेतु फिर निर्मित होने लगा।

सन् 1995 में मैंने 'पच्चीस बोल' (जैन तत्त्व ग्रंथ) पर प्रवचन दिये। तब काव्य की लहर पुनः आयी और कुण्डलिया छन्द में पच्चीस बोल के मोती दे गईं। उन्हें अंकित किया। सुनाया। प्रतिक्रियायें उत्साहवर्द्धक थीं। कुछ बच्चों ने उन्हें मुखाग्र भी किया।

काव्य-रचना व प्रकाशन के अवसर मेरे जीवन में भले ही कम आये हों, पर कवियों व कविताओं से आत्मीय सम्बन्ध के संयोग प्रभूत मात्रा में उपलब्ध होते रहे। श्रद्धाशील महावीर प्रसाद जी 'मधुप', डॉ० मोहन मनीषी, डॉ० रघुवीर प्रसाद जी सरल (भिवानी), श्री ओमप्रकाश 'हरियाणवी', विनय देववन्दी, डॉ० विनय विश्वास, अशेष जी आदि कविजन समय-समय पर गुरु-चरणों में आते रहते हैं और उनकी रचनायें सुनने के साथ-साथ काव्य-चर्चा के क्षण भी मुझे सहज ही मिलते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त परम पूज्य गुरुदेव श्री की काव्य-कृतियों, 'ऋतम्भरा', 'मंदाकिनी', 'कादम्बिनी' एवम् अन्य स्फुट रचनाओं, के प्रकाशन-क्रम में उन्हें पढ़ने तथा व्यवस्था की दृष्टि से देखने का सौभाग्य भी मुझे मिलता रहा। आज भी गुरुदेव को जब कभी कुछ लिखना होता है तो वे मुझे कागज-कलम लाने का आदेश देते हैं। मैं समझ जाता हूँ कि गुरुदेव कोई मूल्यवान धरोहर प्रदान करने जा रहे हैं। काव्य से मेरे सम्बन्ध का एक रूप यह भी है।

अब... इस सम्बन्ध का नवीनतम रूप-प्रस्तुत पुस्तक। महावीर जयंती के पुनीत अवसर पर इस वर्ष 'श्री सम्बोधि' पत्रिका का काव्य-विशेषांक प्रकाशित करने की योजना बनी। पूर्व-रचित कविताओं का, विशेष रूप से, भगवान् महावीर के जीवनाधार पर रचित काव्य का, स्मरण आया। उस काव्य के कुछ अंश पत्रिका में प्रकाशित भी हुए। उसी क्रम में प्रस्तुत काव्य पूर्ण हुआ। नाम जँचा— 'प्रकाश-पर्व: महावीर'। सम्बोधि (मासिक) के यशस्वी सम्पादक तथा सुप्रसिद्ध कवि श्रद्धाशील डॉ० विनय विश्वास ने इस पुस्तक का सम्पादन किया। मुनिरत्न श्री अमित मुनि जी ने अपनी कलात्मकता से इसे व्यवस्था दी और यह सचित्र कृति रूपायित हुई। प्रिय शिष्य अनुज के० भटनागर ने इसका चित्रांकन किया।

मेरे परम पूज्य गुरुदेव श्री रामकृष्ण जी महाराज का अविरल स्नेह 'प्रकाश-पर्व: महावीर' के शब्द-शब्द में समाया है। अस्वस्थ स्थिति में भी उन्होंने इसे पूर्णतः सुना। इसमें शेष त्रुटियाँ दूर कीं। अपने अमूल्य शब्द-माणिक्य इसे प्रदान किये। गुरुदेव के मंगलमय पथ-प्रदर्शन के अभाव में यह कृति कदापि पूर्ण न हो पाती। मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है—परम पूज्य गुरुदेव के प्रति।

भगवान् महावीर प्रकाश के ऐसे पर्व थे, जिसमें सभी भेदभाव भूलकर अनन्त जीव जीवन्त उल्लास के साथ सम्मिलित हुए। इस प्रकाश-पर्व से अन्य तिमिराच्छन्न जीवों का भी उत्थान हो, इसी मंगल-भावना के साथ।

—सुभद्र मुनि

भूमिका

प्रकाश-पर्व : महावीर

'प्रकाश-पर्व: महावीर' मुक्त छंद के रूप में रची गई काव्य-कृति है। भगवान् महावीर अथवा पूर्ण मनुष्यत्व के अक्षय जीवन को आधार बनाकर हिन्दी के इतिहास में सम्भवतः प्रथम बार उस दिव्य जीवन की अर्थछायाएँ मुक्त-छन्द का रूप धरकर प्रकाशित हो रही हैं। भगवान् महावीर का जीवन मुक्ति का जीवन्त छन्द था। इसीलिये समय-समय पर अनेक कवियों ने अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुरूप उसे तरह-तरह से गाया। अनेक लेखकों ने अपने-अपने ढंग से उसे व्याख्यायित-विश्लेषित किया। मुक्ति के उस जीवन्त छन्द के सर्वव्यापी प्रभाव से शुष्कता ने कवित्व बनकर धन्यता अनुभव की। व्यक्तित्व ही ऐसा था वह।

वही व्यक्तित्व 'प्रकाश-पर्व: महावीर' में पुनः भास्वर हुआ। विशेषता यह कि शब्द-शब्द में जीया गया उसे। अर्थ-अर्थ में अनुभव किया गया। भाव-भाव में गाया गया। यही कारण है कि रचने की कोशिश इस पूरी काव्य-कृति में कहीं दिखलाई नहीं देती। कृत्रिम सौंदर्य ढूँढे नहीं मिलता। जहाँ देखो अनुभूति के साँचे में सहजता से ढल कर उभरती काव्य पंक्तियाँ। मुक्त छंद की आवश्यकता ही कवियों ने सहजता के कारण अनुभव की थी। चाहा था कि अर्थ के अतिरिक्त, मात्र छन्द निर्वाह हेतु लाये जाने वाले शब्दों के बोझ से मुक्त हो कविता। शब्द की लय अर्थ की लय के लिये हो। ऐसा न हो कि अर्थ की लय शब्द की लय के लिये उपकरण-मात्र बनकर रह जाये। अर्थ का सम्पूर्ण गौरव कहीं साध्य से साधन न बन जाए, इसी चिन्ता से हिन्दी कविता के इतिहास में मुक्त छन्द जन्मा था।

भारत के स्वाधीनता संघर्ष के दौर में जन्म लेकर मुक्त छन्द स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी कविता की मुख्य धारा बन गया। छन्द की रूढ़ियों से मुक्त होकर उसने लय से अपना सम्बन्ध बनाये रखा। जहाँ-जहाँ लय उससे छूटी वहाँ-वहाँ न तो वह छन्द रहा, और न ही कविता। भले ही कविता की शकल में उसे छापा और सम्मानित किया जाता रहा हो। महत्वपूर्ण यह है कि छन्द ने जब अर्थ समृद्धि और उसकी लय के लिए अपने सभी नियम ढाँच पर लगा दिये, तब वह 'मुक्त छन्द' कहलाया। उसमें न तुकें मिलाने का अपरिहार्य आग्रह शेष रहा और न ही निश्चित वर्ण-क्रम एवम् वर्ण गणना का पांडित्यपूर्ण अभ्यास। यदि सुन्दर या सार्थक शब्द में से किसी एक को चुनने का प्रश्न उसके सम्मुख आया तो उसने सार्थक शब्द को ही चुना। इसीलिये उसकी अर्थवत्ता अर्थ की सहजता और सहजता के अर्थ को काव्य-रूप देने में रही। यह अर्थवत्ता प्रस्तुत कृति में घटित हुई है। छन्द-शास्त्र में उल्लिखित रूढ़िगत नियमों का निर्वाह यहाँ नहीं है। यहाँ है—अर्थ की और उससे भी आगे बढ़कर भाव की एक विराट् लय, जो सम्पूर्ण कृति में आद्योपान्त गूँजती है। यह बात और है कि भाव की इस लय ने शब्दों की लय से कोई वैर नहीं रखा है। अतः शब्द लय की सृष्टि भी स्वयमेव हो गई है परन्तु केन्द्र में रही है भाव की लय। इस मुक्त छन्द में मुक्ति के जीवन्त छन्द 'भगवान् महावीर' प्रभावोत्पादक ढंग से उभर आये हैं।

जैन धर्म प्रभावक गुरुदेव श्री सुभद्र मुनि जी महाराज द्वारा सृजित विविधानेक गद्य रचनाओं से जो पाठक/श्रोता परिचित हैं, वे इस तथ्य को भी भली-भाँति जानते हैं कि गद्य रचनाओं के बीच-बीच में स्थान-स्थान पर गुरुदेव का कवित्व प्रकट होता रहा है। मुक्त छन्द में इससे पूर्व भी गुरुदेव की सृजन क्षमता रूप ग्रहण करती रही है। पत्र-पत्रिकाओं में आपश्री की कुछ कवितायें प्रकाशित भी हुई हैं परन्तु पुस्तक रूप में एक सुदीर्घ काव्य-कृति का प्रकाशन पहली बार हुआ है। निश्चित ही पाठकों के लिए गुरुदेव के काव्य सृजन का यह रूप दर्शनीय होगा।

'प्रकाश-पर्व: महावीर' की उत्कृष्टता काव्य-रचना के विभिन्न पक्षों में चरितार्थ हुई है। यथार्थ के मार्मिक अंकन की दृष्टि

से, भगवान् महावीर के समय का समाज स्त्रियों के प्रति कितना क्रूर था, इसका चित्रण प्रस्तुत पंक्तियों में द्रष्टव्य है—“स्त्रियों को भी बनाया जाता है दासियाँ/अपनी इच्छा से वे न हँस सकती हैं—न ले सकती हैं उवासियाँ/उन्हें/समझा जाता है/मनोरंजन का सामान/फिर वे/कुओं में कूद कर ब्यों न दें अपनी जान/उनके लिये/दिवास्वप्न है/सम्मान की जगह/कैसा समाज है यह।” इस कृति की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि उपमायें यहाँ अलंकार मात्र के रूप में प्रयुक्त नहीं हुईं। अभिव्यक्ति के अलंकरण का ही कार्य वे नहीं करतीं। कविता की अनिवार्यता बन गई है वे। प्रभु के जन्म का सृष्टि पर प्रभाव अंकित करते हुए गुरुदेव ने कहा—“जैसे मूर्च्छित में/चेतना आती है/जैसे भूंगेपन की जबान गीत गाती है/जैसे नेत्रहीन को नेत्र मिलते हैं/जैसे क्रूरता के भीतर आंसू खिलते हैं/जैसे अहंकार में आने लगे सरलता/जैसे पत्थर दिल लोभ/उगाने लगे/त्याग की तरलता/जैसे क्रोध की दुनिया में क्षमा मुस्कराये/प्रभु आये।” इन पंक्तियों से यदि उपमायें निकाल दी जायें तो काव्य-सौंदर्य ही नहीं, काव्य अर्थ भी समाप्त हो जायेगा। इस से ज्ञात होता है कि अंतर्वस्तु की अनिवार्य मांग पर ही यहां उपमायें आई हैं, कवि के अलंकार मोह या प्रतिमा प्रदर्शन मोह के कारण नहीं।

बालक वर्द्धमान की परीक्षा लेने आया देव जब दैत्य का रूप धरता है तो काव्य चित्रालोक हो उठता है—“लम्बे नुकीले तीखे/दांत और नाखून दीखे/झाड़ झंखाड़ से बाल/आँखें अंगारों सी लाल।” पेड़ तले खड़े वर्द्धमान के सामने जब एक पंछी घायल होकर गिर पड़ता है “तो वर्द्धमान का/रोम-रोम कराह उठा/पोर-पोर हो गया/अपने रक्त से रंजित/आँखों में उमड़ आई अहिंसा की नदी।” वर्द्धमान के भीतर होने वाला भावान्दोलन इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। संवादों का भी कुशल उपयोग प्रस्तुत काव्य कृति में किया गया है। शूलपाणि यक्ष अपने पूर्व भव की कथा सुनाता है। बताता है कि वह अपने स्वामी का चहेता बैल था। इतना चहेता कि उसने उसे कभी जोता नहीं था। एक बार स्वामी पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर व्यापार हेतु चला तो वर्द्धमान ग्राम के निकट नदी के किनारे में गाड़ियाँ फँस गईं। किसी तरह न निकलीं। तब उसी ने उन्हें निकाला। अत्यंत श्रम से उसके कंधे टूट गये। वह जमीन पर गिर पड़ा। स्वामी ने ग्रामवासियों को धन देकर कहा—“यह जो धरती पर लेटा है/बैल नहीं है यह/मेरा बैल है/इसकी करते रहना सार-संभाल/हर तरह से/रखते रहना खयाल/ये धन इतना है/कि इसका महीनों तक नहीं होगा क्षय/मैं अपने बत्स को साथ ले जाऊंगा लौटते समय/इसके बिना मेरा जीवन/बना रहेगा संत्रास/लो ! मेरा बैल/मेरी अमानत है तुम्हारे पास।” संवाद मार्मिक हैं। कुशल भाषा प्रयोग का एक और प्रमाण। भगवान् महावीर की परीक्षा लेने जब संगम देव चला तो उसे “सुविधा-पोषित अहंकार” कहा गया। सजग शब्द प्रयोग का यह जीवन्त उदाहरण है। कथा प्रवाह को अप्रसर करते बिम्ब इन पंक्तियों में हैं—महावीर एक बार फिर चन्दना की ओर मुड़े/चन्दना के धधकते नेत्र/पुनः शीतलता से जा जुड़े/जो असम्भव लगता था/वही घट गया/अभिग्रह पूर्ण हुआ/कुहासा छंट गया/महावीर ने अरसे बाद/करपात्र बढ़ाया/मनुष्य तो मनुष्य/पशु-पक्षियों और देवी-देवताओं के नयनों में भी/हर्ष भर आया।” कथा-प्रवाह के बीच-बीच में सूक्ति बन जाने वाली पंक्तियों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे—“सचमुच !/ज्ञान के क्षेत्र में/कभी कोई कुछ नहीं खोता है/ यही एक ऐसा मैदान है जिसमें/हारने का भी गर्व होता है।” बहुत कम शब्दों में बहुत बड़ी बात समेटने की शक्ति यहाँ देखिये—“प्रभु ने/वेदनाओं को हर्ष/और पतन को उत्कर्ष बनाया/धर्म-सृष्टि के पैमाने से सिखाया/पाप-पुण्य को मापना/तीर्थकर महावीर ने की/धर्म संघ तीर्थ की स्थापना/जिसके आलोक से धन्य है आज/सम्पूर्ण समाज।”

काव्य-शक्ति के और भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत कृति में भरपूर हैं। सभी को उद्धृत कर विवेचना की जाये तो एक पूरी पुस्तक तैयार हो जाये। वास्तविकता यह है कि ‘प्रकाश-पर्व: महावीर’ एक सशक्त काव्यकृति है। भगवान् महावीर के सुप्रसिद्ध जीवन-प्रसंगों की पुनर्रचना इस ढंग से करना कि वे प्रसंग नये भी हो जायें तथा अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक भी, एक बड़ी चुनौती है। प्रस्तुत काव्य-कृति इस चुनौती का समुचित एवम् सर्जनात्मक प्रत्युत्तर है। जन सामान्य से लेकर साहित्यिक पाठक वर्ग तक, सभी को प्रभावित करने की क्षमता से सम्पन्न है—‘प्रकाश-पर्व: महावीर’।

आशा है इसका स्वागत भी उतना ही सक्षम होगा, जितनी सक्षम यह स्वयं है।

—डा० विनय विश्वास

अनन्त प्रकाश के स्रोत : भगवान् महावीर

—सुभद्र मुनि

भगवान् महावीर मनुष्यता की सुबह थे। अमानवीयता का अंधकार उनके स्पर्श-मात्र से सिहर उठा। जैसे-जैसे प्रभु की जीवन-यात्रा का सूर्य आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे यह अन्धकार नष्ट होता गया। मानवता के पुष्प खिलते गए। प्राणियों में चेतना संचरित होती गई। अहिंसा के स्रोत, सत्य के प्रकाश, अस्तेय की आत्मा, अपरिग्रह के प्रमाण और ब्रह्मचर्य के तेज-पुंज भगवान् महावीर। अपने-आप में वे उत्तरोत्तर उन्नत होती मनुष्यता का संपूर्ण इतिहास थे और इसी कारण से अपने युग के इतिहास निर्माता भी थे।

संस्कृति के इस दिनकर ने ईसा से 599 वर्ष पूर्व बिहार प्रदेश में वैशाली गणतंत्र के क्षत्रिय कुण्डग्राम में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के पवित्र दिन जन्म ग्रहण किया। ज्ञातृवंश व कश्यप गोत्र के राजा सिद्धार्थ पिता बनकर धन्य हुए और वशिष्ठ गोत्र से सम्बद्ध त्रिशला माता बनकर गौरवान्वित हुई। प्रभु के गर्भवास-काल में जो चौदह दिव्य स्वप्न उन्होंने देखे थे, वे सबके सब एक साथ फलित हुए। उनका मातृत्व सब कुछ पा गया। प्रभु के गर्भवास काल से ही राज्य में वैभव और ऐश्वर्य की अपार वृद्धि हुई। अतएव जन्म ग्रहण करने के ग्यारहवें दिन समारोहपूर्वक उनका नामकरण हुआ—वर्द्धमान। माता-पिता, चाचा सुपाश्वं कुमार, बड़े भाई नंदीवर्धन तथा बड़ी बहन सुदर्शना के वात्सल्य-केन्द्र बने। जब वर्द्धमान आठ वर्ष के हुए तो शिक्षा-प्राप्ति हेतु उन्हें कलाचार्य के पास गुरुकुल में भेजा गया। कलाचार्य बोले-इसमें तो मुझे भी पढ़ाने की सामर्थ्य है।" वर्द्धमान अस्तुतः स्वयंबुद्ध थे। गर्भ-काल से ही उन्हें मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान प्राप्त थे। ज्ञान के कारण उन्हें 'सन्मति, साहस के कारण 'वीर', पराक्रम के कारण 'महावीर, अत्यधिक धैर्य व शौर्य के कारण अतिवीर' एवम् सभी जीवों की पीड़ा को अपनी पीड़ा के रूप में अनुभव करने के कारण 'करुणावतार' कहा गया। उनका बचपन व कैशोर्य इन सभी नामों को जन्म देने वाली विलक्षण घटनाओं से सम्पन्न रहा।

युवा होने पर परिवारजनों ने वर्द्धमान के न चाहते हुए भी अपनी खुशी के उद्देश्य से वर्द्धमान का विवाह यशोदा नाम की राजकुमारी से कर दिया। दूसरों की भावनाओं के प्रति सम्मान-भाव उनमें कितना अधिक था, यह बताने के लिए उनके जीवन का एक यह सत्य पर्याप्त है कि गर्भ में रहते हुए ही माता-पिता का संतान-मोह जानकर उन्होंने निर्णय कर लिया था—'इनके रहते मैं दीक्षा-ग्रहण नहीं करूंगा।" माता-पिता अतीत हुए तो बड़े भाई के वात्सल्य का आदर करते हुए दीक्षा की दो वर्ष तक वीर स्वर्णित कर दिया परन्तु भाई से यह वचन भी ले लिया कि दो वर्ष बाद वे नहीं रोकेंगे। दीक्षा लेने से पूर्व प्रभु ठरिण्डा महादुःख दूर करने के लिए जनसाधारण को एक वर्ष तक प्रति दिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्राएं वांटने लगे।

मार्गशांति के अशमी (29 दिसम्बर, ईसा पूर्व 569) के दिन भगवान् ने समस्त भौतिक उपादानों का त्याग करते हुए केशन्तन-दीक्षा-अंगीकार की। दीक्षा लेते ही उन्हें मनः पर्यय ज्ञान (दूसरे के मन के सूक्ष्म विचारों का ज्ञान) हो गया। वे संतुष्ट धारक बन गए। संयम के कंटकाकीर्ण पथ पर नंगे पांव उनकी महायात्रा आरम्भ हुई। इस यात्रा में विविध अनेक उपसर्ग कर देने वाले भवानक उपसर्ग तथा परीषह उन्होंने समभावपूर्वक सहे। क्षमा का महानु धर्म उनके

जीवन का सहज अंग सदैव बना रहा। भूख, प्यास, सर्दी, आंधी, बारिश आदि प्राकृतिक परीषह उनकी अविचल साधना के सम्मुख निस्तेज हो गए।

साधनारत महावीर को कोड़े से पीटने वाले ग्वाले ने क्षमा और अभय का दान पाया। हाथी, शेर, सांप और बिच्छू आदि का रूप धर कर उन्हें सताने वाले यक्ष ने मैत्री, प्रेम व करुणा का अमृत-मंत्र पाया। चंडकौशिक जैसे क्रोधी सर्प ने उनके पांव में विषैले दांत गड़ाकर रक्त के स्थान पर दूध निकलता देखा और आत्म-कल्याण का अचूक बोध पाया। संगम देव ने उन्हें दबा देने वाली धूल की बारिश दी। विषैली चींटियों का आक्रमण उन पर करवाया। भयानक मच्छरों से उनकी देह को पाट दिया। दीमकों की बाबी बना दिया उनका पूरा शरीर। सर्पदन्त और उसके बाद विकराल गज-दंत का प्रहार किया उन पर, उन्हें जंगली हाथी के पांवों तले रौंदवा डाला पर, महावीर सच में महावीर थे। पर्वत हिले तो वे हिलें। स्वयं को उनका शिष्य घोषित कर अपराध किए और नाटक रचकर उन्हें फांसी के तख्ते तक पहुंचा दिया। ध्यानस्थ महावीर के पांवों पर लकड़ियां जलाई और उस आग में खीर पकाई। भांति-भांति की प्रचंड यातनाओं का अटूट क्रम संगम देव ने उन्हें दिया किन्तु बदले में पाया प्रभु की आंखों में झिलमिलाता महाकरुणा का वह सागर, जो संगम के आगामी दुःखों को देखकर उमड़ आया था। एक ग्वाले ने उनके कानों में लकड़ी की कीलें ठोक दीं और पायी सुमेरु-सी विराट् तथा मौन क्षमा।

बारह वर्ष से भी अधिक समय तक भव-बंधन में जकड़ने वाले कर्मों को वे शून्य करते रहे। अंततः जृम्भक ग्राम के सीमान्त प्रदेश में ऋजुबालुका नदी के तट पर श्यामक किसान के खेत में शाल वृक्ष के नीचे महावीर गोदोहन आसन लगाकर ध्यानलीन हो गए। पांचों ज्ञानेन्द्रियों और पांचों कर्मेन्द्रियों को अपने तपःपूत हाथों में ऐसे आबद्ध कर लिया जैसे गाय दोहते समय ग्वाले के हाथों में धन आबद्ध होते हैं। उनकी अंतरात्मा विशुद्ध होने लगी। जन्म-जन्मांतर के पाप-कर्म नष्ट होने लगे। ज्ञान का अविरल अमृत बरसने लगा। वैशाख शुक्ल दशमी के दिन श्रमण महावीर भगवान् महावीर बन गए। वे सर्वज्ञ हो गए। केवल ज्ञान पा गए। असंख्य सूर्यों का प्रकाश जैसे उनमें समा गया हो।

अब जानने के लिए कुछ भी शेष न रहा। बताने के लिए असीम ज्ञान था। दीक्षा ग्रहण करते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि “जब तक पूर्ण ज्ञान नहीं पाऊंगा तब तक उपदेश नहीं दूंगा।” अब प्राप्त हो चुके अनन्त ज्ञान को अन्य जीवों के कल्याण हेतु बांटने का समय आ चुका था। भगवान् महावीर ने देशना दी उस अर्धमागधी भाषा में, जो उस समय की जन-भाषा थी। जीव-जीव ने जाना कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से युक्त जीवन आत्म-कल्याण करने में समर्थ हो सकता है।

भगवान् महावीर ने अहिंसा को परम धर्म कहा। ‘जीओ और जीने दो’ का जीवनदायी मंत्र उन्होंने सृष्टि को प्रदान किया। अहिंसा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया कि “प्राणी-मात्र के प्रति संयम रखना ही अहिंसा है।” संयम रखने का अर्थ क्या है? भगवान्

महावीर ने फरमाया—

“तेसिं अच्छण जोएण निच्चं होयच्चयं सिद्ध
मणसा काय वक्केण एवं हवई संजए॥”

—दशवैकालिक

अर्थात् मन-वचन-काया से किसी भी प्रकार के जीवों की हिंसा न हो तो जीव संयमी होता है। इस प्रकार का जीवन जीते रहना ही अहिंसा है। वास्तव में अहिंसा स्वभाव ही प्राकृतिक स्वभाव है। यही कारण है कि अहिंसा जीवन में बिना

कुछ किये स्वयमेव ही उपस्थित रहती है जबकि हिंसा बिना किये हो ही नहीं सकती। हिंसा का अभाव ही अहिंसा है और यदि कोई भी जीव हिंसा न करे तो मूलतः सृष्टि अहिंसक है। हिंसा से अशान्ति और शत्रुता का जन्म होता है जबकि अहिंसा, शान्ति और सद्भाव की जननी है। हिंसा शारीरिक व आत्मिक बल क्षीण करती है। दूसरी ओर, अहिंसा हर तरह का बल प्रदान करती है। हिंसा विध्वंस को निमंत्रण देती है और अहिंसा सृजन को। हिंसा भयभीत करती है तो अहिंसा अभय-दायिनी है। भगवान् महावीर ने कहा कि जीना सब चाहते हैं और अहिंसा सब जीवों द्वारा एक-दूसरे के जीने के प्राकृतिक अधिकार की रक्षा करने वाला मूल्य है। अपने समान सभी को जानो। दूसरों से वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो। जो किसी को जीवन दे नहीं सकता, उसे किसी का जीवन लेने का भी हक नहीं है। खून से सना वस्त्र खून से कभी साफ नहीं होता। इसी प्रकार शत्रुता भी शत्रुता से अथवा हिंसा भी हिंसा से समाप्त नहीं हो सकती। उल्लेखनीय है कि अहिंसा भगवान् महावीर का जीवन-अनुभव था। दूसरों को अहिंसा का ज्ञान देने से पूर्व अपने तीव्रतम विरोधी के प्रति भी क्षमा जैसा सद्भाव बनाये रखने का जीवट स्वयं प्रभु के अपने जीवन का महज अंग बन चुका था।

भगवान् महावीर ने सिद्धान्तों का प्रतिपादन पहले अपने जीवन-आचरण के माध्यम से किया था और बाद में अपनी देशना के माध्यम से। केवल ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने बतलाया—ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो। जो अहिंसक है, वही ज्ञानी है। अहिंसा ज्ञान का ही व्यावहारिक रूप है। इसीलिए सर्वज्ञ प्रभु ने वही सत्य बोलने का निर्देश दिया, जो कल्याणकारी और किसी को दुःख पहुंचाने वाला न हो। उनकी देशना है—

“तहेव फरुसा भासा गुरुभूओवघाइणी।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो।”

अर्थात् जो भाषा कठोर हो, दूसरों को दुःख पहुंचाने वाली हो, वह चाहे सत्य ही क्यों न हो, नहीं बोलनी चाहिए। उस से पाप आगमन होता है। निरपेक्ष सत्य भगवान् महावीर की दृष्टि में मूल्यवान् नहीं। मूल्य यदि है तो अहिंसक सत्य का। दूसरे शब्दों में कल्याण-सापेक्ष सत्य ही वस्तुतः सत्य है। गोशालक ने जब स्वयं को महावीर का शिष्य बताकर अपराध किये और अपने छल से साधनारत प्रभु को फांसी तक पहुंचा दिया तब भी उन्होंने गोशालक का छद्म उद्घाटित करने वाला सत्य नहीं बोला। इसका कारण यही था कि उस सत्य से गोशालक का अहित होता। उनकी अहिंसा-विषयक दृष्टि के लिए मित्र और शत्रु का भेद किंचित् भी महत्त्व नहीं रखता। जो सत्य किसी के लिए भी अहितकारी हो, वह उन्होंने मन-वचन-कर्म से न स्वयं कभी बोला, न किसी से बुलवाया और न ही कभी बोलने वाले का अनुमोदन किया। किसी भी स्थिति में किसी का अहित न हो, यह भगवान् महावीर के चिंतन तथा उनकी देशना की केन्द्रीय विशेषता रही।

सभी का हित दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने फरमाया—

“दंतसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स गिणहणा अवि दुक्कारं।”

—उत्तराध्ययन 19/28

अर्थात् मालिक न दे तो दांत कुरेदने को तृण-तिनका नहीं लेना चाहिए। संयमी को केवल उतनी ही चीजें लेनी चाहिए, जो जरूरी हों और जिनमें किसी तरह का दोष न हो। ये दोनों बातें कठिन हैं। स्वामी की अनुमति के लिए बिना उस की किसी भी वस्तु का उपयोग चोरी है। इस से स्वामी क्षुब्ध होता है और अनधिकार चेष्टा करने वाला आकर्षक वस्तुओं में अपनी निरंतर बढ़ती आसक्ति के कारण और अधिक अतृप्त हो जाता है। ऐसे में लोभवश चोरी कर बैठना उसकी आदत बनती जाती है। उसकी सारी सोच केवल अपनी इच्छाएं ही गलत-सही तरीकों से पूरी करने तक सीमित हो जाती

है। भगवान् महावीर का सम्पूर्ण जीवन अहिंसा और संयम से आलोकित रहा। स्वयं कष्ट सहकर भी उन्होंने कभी किसी का अहित नहीं चाहा। स्वामी से छिपाकर उस की वस्तु लेना या उसके मना करने पर भी उसकी वस्तु का उपयोग करना प्रभु ने वर्जित ठहराया। यह उनके द्वारा जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया को भी धर्म-सम्मत रूप देने वाले गहन-गम्भीर पर्यवेक्षण का सूचक भी है और मनुष्य के सदगुणों की अविनाश रक्षा का आग्रह भी। उन्होंने मनुष्य को सचेत करते हुए बताया—

“कोहो पीडं पणासेइ, माणो विणय-नासणो ।
माया मित्राणि नासेइ, लोभो सब्ब-विणासणो ।”

क्रोध प्रीति का नाश करता है, अहंकार नम्रता का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सदगुणों का नाश कर देता है। क्रोध, अहंकार, माया और लोभ से वही बच सकता है, जिसे संयम से जीवन-यापन करने की कला आती हो। दूसरे शब्दों में संयम सदगुणों का स्रोत है।

भगवान् महावीर ने इस संयम के साथ ब्रह्मचर्य को और भी आवश्यक बताया है। जैन तथा मानव संस्कृति को उनका यह बहुमूल्य योगदान है। उन्होंने कहा—

“तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं।”

अर्थात् ब्रह्मचर्य तपों में उत्तम तप है। इसकी साधना करने वाले साधकों में अनासक्ति भाव की संभावना और भी अधिक बढ़ जाती है तथा अधिकाधिक अनासक्ति संयम की ओर अधिकाधिक अग्रसर करती है। काम-भोग मनुष्य को जितने अधिक मिलते जाते हैं उतना ही अधिक वह उनके लिए लालायित होता जाता है। इसीलिए सर्वज्ञ महावीर ने फरमाया—

“सल्लंकामा विसंकामा कामाआसी विसोवमा ।
कामा य पत्थेमाणा, अकामा जंति दोग्गइं॥”,

काम भोग शल्य-रूप हैं, विषरूप हैं और विषधर के समान हैं। काम-भोगों की लालसा रखने वाले प्राणी उन्हें प्राप्त किए बिना ही अतृप्त दशा में एक दिन दुर्गति को प्राप्त हो जाते हैं। दूसरी ओर संयम का आचरण जीव को तेज से देदीप्यमान् व्यक्तित्व तो प्रदान करता ही है, उसे तीव्र गति से मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर भी करता है। काम-भोग तो कर्मों की उस दलदल के समान हैं जिनमें एक बार जीवात्मा धंस जाये तो वह धंसती ही चली जाती है। पहले जीवन काम-भोगों का प्रयोग करता है और फिर काम-भोग उसका प्रयोग करते हैं। विषय वासनाओं से यदि जीवन संचालित होना आरम्भ हो जाये तो जीव उनका गुलाम बनता जाता है। प्रभु द्वारा दिया जाने वाला काम-भोगों से बचने का उपदेश वस्तुतः गुलामी के बंधन तोड़ कर स्वतंत्रतापूर्वक जीने का आह्वान है।

जीव को परिग्रह भी स्वतंत्र नहीं रहने देता। परिग्रह का अर्थ भगवान् महावीर ने बताया—आवश्यकता से अधिक संचय करना। संचय समानता की शत्रु प्रवृत्ति होने के कारण सामाजिक अपराध है। यह अपराध मनुष्य के पदार्थों में आसक्ति-भाव से उगता है। भगवान् महावीर ने देशना दी—

“न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइवुत्तं महेसिणा ॥”

—दशवैकालिक 6/21

अर्थात् कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थ परिग्रह नहीं हैं। वास्तविक परिग्रह तो किसी भी पदार्थ पर आसक्ति का होना है। आसक्ति के रहने पर त्याग का होना संभव नहीं। आसक्ति तो लोभ को ही जन्म दे सकती है। उसी लोभ को जो सभी सद्गुणों का नाश कर देता है। परिग्रह का स्वभाव है कि संचय जितना अधिक होता जाता है, उसकी भूख उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है। संचय से तृप्ति कभी नहीं होती। गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज इसीलिए कहा करते थे कि खोना हो तो संचय करो। आशय यह कि धन संपदा को आसक्ति से धन-संपदा की भूख और भड़केगी: वह धनवान् बना-बना कर इतना दरिद्र कर देगी कि और अधिक धन-संपदा के लिए जीव मारा-मारा भटकता रहेगा। वह धन के लिए धन उत्पन्न करना शुरू कर देगा। धन को अपने हिमाय से वह खर्च करता रहेगा। जीव को धनवशता की असहायता से बचाने के लिए भगवान् महावीर ने कहा—

“पुढवी साली जवाचेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, हइ विज्जा तवं चरे॥”

चावल और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त करने में असमर्थ है—यह जान कर संयम का ही आचरण करना चाहिए। संयम का आचरण वही कर सकता है जो ज्ञानी हो और “ज्ञानी संयम—पुरुष, उपकरणों के लेने और रखने में कहीं भी/ किसी भी प्रकार का ममत्व नहीं करते। और तो क्या अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं रखते।” वे जानते हैं कि यदि थोड़ा भी ममत्व शेष रहा तो सुविधाओं का गुलाम बनने में देर नहीं लगेगी। जगत् व समाज में भयानक विषमता देखते देखते फैल जायेगी। बढ़ते हुए राग-द्वेष असंख्य कर्मों को पलक झपकते ही आत्मा पर लाद देंगे। कर्म-फल भोगने के लिए जन्म-मृत्यु का दुष्चक्र कभी समाप्त न होगा। इसीलिए अपरिग्रह का आचरण अनिवार्य है।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भगवान् महावीर के मतानुसार संयमाचार के अनिवार्य अंग हैं। धर्म विचार की अनिवार्यता है—अनेकान्त युक्त चिंतन पद्धति। इस पद्धति की विशेषता है—सत्य को उसके सभी संभव पक्षों सहित या सम्पूर्णता में देखना। भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने पर एक ही वस्तु अनेक धर्मात्मक दिखलायी देती है। किसी लोभी व्यक्ति की दृष्टि से जो हीरे जीवन का सार हैं, किसी संत की दृष्टि से बोझिल पत्थर मात्र हैं। व्यक्ति न केवल पिता है, न केवल पुत्र। वह पिता भी है, भाई भी है। उसके विषय में कही गई किसी भी एक बात को पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता। पूर्ण सत्य सभी पक्षों से मिलकर बनता है। मूलतः भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त-दर्शन यही है। अनेकान्त की चिन्तन पद्धति सत्य को अनेक दृष्टियों से देखने-समझने के कारण व्यक्ति को न तो ज्ञान के केवल एक आयाम तक सीमित करती है और न ही उसे संकीर्ण या हठी बनने देती है। समभावपूर्वक सत्य को देखने-समझने की शक्ति प्रदान करता है—अनेकान्त-दर्शन।

विचार और आचार, दोनों ही धरातलों पर नैतिक मूल्यों की वांछनीयता भगवान् महावीर ने रेखांकित की। वर्षों की अटूट साधना से ज्ञान का जो फल उन्होंने पाया था, उसका अलौकिक आस्वाद या आनंद वे तीस वर्ष तक घूम-घूमकर वांटते रहे। लोक-कल्याण के लिए प्रभु ने चार तीर्थों की स्थापना की (1) श्रमण संघ (2) श्रमणी संघ (3) श्रावक संघ (4) श्राविका संघ। तीर्थ के संस्थापक होने के कारण वे तीर्थंकर कहलाये। उन्होंने संसार में लुप्त तथा विकृत हो रही धर्म-मर्यादा की स्थापना की। भव सागर से वे स्वयं भी पार हुए और दूसरों को भी पार कराया। सृष्टि के समस्त प्राणियों के लिए जाति-वर्ग के भेदों को अमान्य ठहराते हुए धर्म की स्थापना की। सभी को मुक्ति-मार्ग पर अग्रसर होने के लिए आमन्त्रित किया।

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर का 42वां तथा अंतिम वर्षावास पावापुरी में था। अपना अंतिम समय निकट जान

कर उन्होंने दो दिन तक निरंतर धर्म देशना दी। आगामी समय में साधकों को संबल देने वाला शिक्षा-संग्रह-सूत्र प्ररूपित किया, जिसे 'उत्तराध्ययन सूत्र' के नाम से जाना जाता है। यह उनकी अन्तिम देशना थी। अपने निर्वाण से पूर्व उन्होंने अपने प्रति राग में दूबे शिष्य व गणधर इन्द्रभूति गौतम को पावापुरी से दूर धर्म-बोध देने के लिए भेज कर उनके केवल-ज्ञान धारक बनने का मार्ग प्रशस्त किया। कार्तिक कृष्णा अमावस्या (नवम्बर, ईसा पूर्व 528) को रात्रि के अन्तिम प्रहर व स्वाति नक्षत्र के शुभ योग में उत्तराध्ययन सूत्र का छत्तीसवां अध्ययन अपनी विरासत के रूप में भव्य आत्माओं के लिए कहते-कहते प्रभु एकदम मौन हो गए। अपने शेष चार कर्मों को भी नष्ट करते हुए विश्व-बंध महावीर ज्ञात लोक से अज्ञात लोक में स्थित हो गए। अजर अमर बन प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए। गणधर गौतम लौटे तो उनका अन्तिम राग-बिन्दु भी नष्ट हो गया। वे केवल ज्ञान से संपन्न हुए। भगवान् महावीर के गर्भ-वास, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान के समय उत्सव मनाने वाले देवताओं ने उनका निर्वाण होने पर भी महोत्सव मनाया। मिथ्याचार का अंधेरा धर्म के दीप प्रकाशित कर प्रभु ने मिटाया था। अतएव देवों तथा मनुष्यों ने महाप्रभु की महिमा में प्रकाशमान् रत्न रखकर बताया कि तीर्थंकर भगवान् महावीर ने जो धर्मदीप जलाया था, वह सदा-सर्वदा जगत् का अंधकार दूर करता रहेगा। लोक-भाषा में जिसे 'दीपावली' कहा जाता है, उसका यह प्रारम्भ था। अनंत प्रकाश दीपों के पावन-उत्सव-दीपावली को तभी से प्रति वर्ष मनाया जाने लगा। □ □

भगवान् महावीर : संक्षिप्त जीवन-रेखायें

—सुभद्र मुनि

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर अहिंसा, क्षमा, करुणा, धैर्य, सत्य, तप, त्याग, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य व संयम का पर्याय थे। लोकमंगल के वे प्रतीक थे। तपो, त्याग की प्रतिमा थे। उनका जीवन श्रेष्ठतम मनुष्यत्व का महाकाव्य है। उनके जीवन की संक्षिप्त झांकी हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

भगवान् महावीर विश्व के सर्वप्रथम गणतंत्र वैशाली के 'क्षत्रिय कुण्डपुर' नामक उपनगर में 30 मार्च, ईसा पूर्व 599 अर्थात् चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को अंधकाराच्छादित गगन में अनेक सूर्यों की तेजस्विता लेकर जन्मे थे। माता त्रिशला का मातृत्व एवम् पिता सिद्धार्थ का पितृत्व सार्थक होकर अजर-अमर हो गया। मां त्रिशला के चौदह दिव्य स्वप्न जो गर्भ-काल में देखे गए थे और अनुभव किए गए थे, स्वप्न-दर्शन के वे विलक्षण क्षण फलीभूत हुए। मति, श्रुत और अवधि ज्ञान भगवान् को गर्भ से ही थे। वे समझ सकते थे कि उनकी कौन-सी गतिविधि माता के लिए सुखद है और कौन-सी दुःखद। यह समझते हुए भगवान् ने गर्भकाल में अपनी गतिविधियां नियंत्रित कर लीं। गर्भस्थ शिशु को स्पन्दन रहित जान कर माता आंखों से आंसू गिराने लगीं। मेरे द्वारा कभी किसी को कष्ट न हो, ऐसा सोचकर प्रभु ने गर्भ में ही प्रतिज्ञा की कि माता-पिता के रहते संयम-पथ पर अपनी यात्रा विधिवत् आरम्भ करके इन्हें दुःखानुभूति का अवसर न दूंगा। इस सीमा तक ज्ञानात्मक-संवेदनासम्पन्न मनीषा का जन्मोत्सव देवताओं द्वारा सम्पादित होना स्वाभाविक ही था।

एक मनीषा का आलोक जब अनेक दिशाओं में प्रसारित होता है तो लोक-जगत् उसे एकाधिक नामों से पहचानता है। गर्भकाल से ही राज्य के वैभव और ऐश्वर्य की अपार वृद्धि होने के कारण भगवान् को 'वर्धमान' के नाम से पुकारा गया। आकाश-गमन की शक्ति से सम्पन्न दो मुनियों द्वारा प्रस्तुत शास्त्रों के गूढ़ प्रश्नों व उनके मन की शंकाओं का सहज समाधान बचपन में ही कर देने के कारण उन्हें 'सन्मति' कहा गया। आठ वर्ष के वर्धमान की परीक्षा लेने आया देव क्रीडारत बाल-समूह के निकट वृक्ष पर भयानक सर्प बन कर लिपट गया तो उसे निर्द्वंद्व भाव से पकड़ने व दूर छोड़ देने के माध्यम से बाल-समूह को भयमुक्त करने के कारण उनका नाम 'वीर' पड़ा। तिन्दूषक खेलते हुए अपरिचित बालक-रूपी दैत्य के कन्धों पर चढ़कर एक ही मुष्टि-प्रहार से उसे आहत कर देने के कारण उन्हें 'महावीर' कहा गया। मदमस्त और विनाशक हो चुके हाथी का मद गजमर्दन विद्या के उपयोग से उतार देने के कारण उनका नाम 'अतिवीर' रखा गया।

भाई नन्दीवर्धन, वहन सुदर्शना, चाचा सुपाशर्व व माता-पिता की स्नेह छाया में व्यतीत होने वाला वर्धमान का बचपन ज्ञान, ध्यान, योग व करुणा की व्यंजक अनेक असाधारण घटनाओं से परिपूर्ण रहा। गुरुकुल के आचार्य उनका ज्ञान देखकर यह कहने को बाध्य हुए कि "यह तो गुरु का मान देने के लिए मेरे पास आया है। साक्षात् ज्ञान को मैं भला क्या सिखा सकता हूँ।" वस्त्रहीनों को वस्त्र, निर्धनों को धन, भूखों को अन्न तथा वृद्धों/रोमियों को यथोचित परिचर्या प्रदान करना भगवान् का स्वभाव था। अनेक बार वे दीनों की समृद्धि बने।

एक बार पेड़ से पक्षी को फड़फड़ाते हुए नीचे गिरते व दम तोड़ते देखकर चण्ड नाम के भील शिकारी बालक से उन्होंने कहा, "जीने का अधिकार सब को है।" तत्काल बालक ने अपनी गुलेल तोड़कर फेंक दी। वह टूटी गुलेल भगवान् की करुणा का प्रतीक थी।

वसन्तपुर के राजा समरवीर व रानी पद्मावती की पुत्री यशोदा से विवाह भगवान् द्वारा परिवार की इच्छा-पूर्ति—मात्र था। पुत्री प्रियदर्शना के पिता बनकर भी वे गृहस्थ-जीवन में योगी के समान कमलवत् निर्लिप्त रहे। अट्ठाईस वर्ष की उम्र में माता पिता अतीत हुए। वैराग्य-जनित सत्य की पुष्टि हुई। गृह-त्याग का संकल्प स्थगित किया तो भ्राता के अश्रुओं के कारण। वचन लिया कि दो वर्ष के बाद वे रोकेंगे नहीं। दो वर्ष की अवधि में पत्नी यशोदा भी संसार से नाता तोड़ गई। दीक्षा से पूर्व भगवान् एक वर्ष तक विशेष रूप से दान करते और निर्धनों के धन बनते रहे। प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्राओं का दान करते रहे।

मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी (29 दिसम्बर, ईसा पूर्व 569), रविवार के तीसरे प्रहर महावीर जैसे भीतर से थे वैसे ही बाहर से हुए। देवताओं और परिवार-जनों ने उनका दीक्षाभिषेक किया। पंचमुष्टि लुंचन व वस्त्र-आभूषणों का त्याग, करते हुए भगवान् ने तीन करण (करना, करवाना, अनुमोदन करना) तीन योग (मन-वचन-काय) से पाप कर्म त्यागने का सर्वहितकारी संकल्प लिया। उसी समय मनःपर्यय ज्ञान (दूसरे के सूक्ष्म विचार जानने की क्षमता) प्राप्त कर चतुर्ज्ञान धारक हुए। यह प्रतिज्ञा कर वैशाली से चल दिये कि "मैं जब तक पूर्णत्व प्राप्त नहीं कर लूंगा तब तक किसी को उपदेश नहीं दूंगा" देवताओं ने देवदूष्य (वहुमूल्य वस्त्र) अर्पित कर अपनी श्रद्धा निवेदित की। असार संसार की भाँति देवदूष्य कब चला गया, महावीर ने नहीं जाना।

तप व उपसर्गों की अग्नि से भगवान् के कुंदन बनने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। एक ग्वाला उन से अपने बैलों का ध्यान रखने के लिए कहकर चला गया। लौटा तो बैल न थे। पूछा तो मौन मिला। क्रुद्ध होकर रस्से से कोड़ा बनाया और निर्ममतापूर्वक पीटता गया उन्हें। इन्द्र ने उसे वास्तविकता बताई और ग्वाला भगवान् के चरणों में सिर रखकर रोने लगा। ध्यानोपरान्त महावीर ने उसे अभय किया और अपने साथ रहने का इन्द्रकृत अनुरोध अस्वीकार कर दिया।

कमारं ग्राम के सीमान्त प्रदेश की यह घटना उपसर्गों और भगवान् की दृढ़ता के बीच वर्षों जारी रहने वाले संवाद का आरम्भ थी। भगवान् देह-बोध तज चुके थे। उनके विमल भावों की सुगन्ध देह के सहस्र-सहस्र रोम-कूपों से प्रवाहित होकर भंवरों को आमंत्रित करती। वे उन्हें स्थान-स्थान पर काटते किन्तु विदेह हो चुके थे—महावीर।

मोराकसन्निवेश ग्राम के निकट बने आश्रम के कुलपति दुइज्जंत का वर्षावास निमन्त्रण स्वीकार कर वे आश्रम की एक कूटी में ध्यानावस्थित हो गए। सूखे के कारण गायें कुटियों का घास-फूस खाने लगीं। अन्य तपस्वियों के समान महावीर ने अपने सिर की छत बचाने के लिए भूखी गायों को मार कर नहीं भगाया तो दुइज्जंत ने उपालम्भ दिया। साधना से अधिक साधनों को महत्व देने वाला यह स्थान उन्होंने तत्काल छोड़ दिया और पांच प्रतिज्ञाएं की : 1. निन्दा-स्तुति वालों के साथ-साथ से सदा दूर रहना। 2. साधना हेतु सुविधाजनक सुरक्षित स्थान का चुनाव न करना और अपने को पूर्णतः प्रकृति की सौंप कर कायोत्सर्ग की साधना करना। 3. भिक्षा मांगने व मार्ग पूछने के अतिरिक्त सर्वथा मौन रहना। 4. कम्पात्र में ही भोजन करना। 5. गृहस्थ के आदर-सत्कार से निष्पक्ष रहना।

साधना में लौन महावीर आस्थिग्राम पहुंचे। गाँव को अपनी प्रतिशोधार्थ से लगभग भस्म कर चुके शूलपाणि यक्ष के शून्य यक्ष-मन्दिर में ध्यान लगाया। यक्ष ने उनका यह साहस देख डरकर, शय, सर्प, दैत्य आदि रूपों में उन्हें सताया किन्तु वे अभय एवम् अस्मिग रहे। यक्ष को सम्बोधित प्रदान की, यक्ष ने आवा नहीं वृजती। शमा के नीर से भी वेर की

अग्नि शांत होगी। अमृत बांटो, अमृत पाओ।” यक्ष ने इसे अपने जीवन का मंत्र बना लिया और वह करुणामूर्ति बन गया।

महावीर आगे बढ़े। कनखल से श्वेताम्बी जाने वाले छोटे मार्ग पर उत्तर वाचाला वन में रहने वाले दुर्दांत सर्प चण्डकौशिक के विषय में सावधान किए जाने पर उनके मन में सर्प के प्रति वात्सल्य उमड़ आया। वे सर्प की बांबी पर पहुंच कर ध्यानस्थ हो गए। सर्प ने उनके पांवों में डंक मारा तो रक्त के स्थान पर दुग्ध-धारा बह निकली। उन्होंने सर्प को आत्म-ज्ञान दिया तो सर्प अहिंसा का उपासक बन गया। विषधर को ज्ञानामृत बना कर महावीर और आगे बढ़ चले।

महावीर के चरण-चिन्ह देखकर एक सामुद्रिक ने अपने ज्ञान से समझा कि ये किसी चक्रवर्ती के चरण हैं। वह उनका अनुकरण करते हुए आगे बढ़ा तो अपने सामने एक भिक्षु को पाया। मन में ज्योतिष-शास्त्र पर सन्देह उगाने लगा तो एक दिव्य-वाणी ने उसे बताया कि ये चक्रवर्तियों के चक्रवर्ती के चिन्ह हैं। वह महावीर की चरण-वंदना कर लौटने ही वाला था कि दृष्टि एक चरण-चिन्ह पर पड़ी, जिसमें कुछ चमक रहा था। वह एक रत्न के रूप में अक्षय निधि थी। उसका दारिद्र्य धुल गया।

राजगृह के उपनगर नालंदा की एक तन्तुवायशाला (कपड़ा बुनने का स्थान) में महावीर ठहरे। गोशालक नामक एक उद्वण्ड युवक भिक्षु भी आ ठहरा, जिसने स्वयं को उनका शिष्य प्रचारित कर दिया। महावीर कर्मग्राम पहुंचे। वहां एक जटाधारी तापस तप कर रहा था, जिसकी जटाओं से जूएं निकल कर पृथ्वी पर गिर रही थीं और उनके प्राण बचाने के लिए वह उन्हें पुनः अपने सिर में रख रहा था। गोशालक ने बारम्बार तापस का उपहास किया तो तापस ने उस पर तेजोलेश्या का प्रयोग कर दिया, जिसकी दाहक पीड़ा से वह चीत्कार कर उठा। करुणार्द्र महावीर ने उसे शीतल लेश्या के प्रयोग से बचाकर अपनी करुणा को साक्षात् किया।

भगवान् की निरन्तर साधना ने दस वर्ष की अवधि स्पर्श की। इन्द्र को कहना पड़ा, “आज देव-शक्ति मनुष्य की तप-शक्ति के आगे नतमाथ है।” संगम नामक देव इसे देव-शक्ति का अपमान समझ ‘तप-शक्ति’ की परीक्षा लेने पहुंचा। तेज हवा, आंधी, धूल-वृष्टि, तूफान का उपयोग किया। महावीर की ध्यानलीन निर्निमेष दृष्टि की पलकें तक नहीं झपकीं। विषैली चींटियां उनकी देह के रोम-रोम पर आक्रमण करने लगीं। महावीर अकम्पित रहे। मच्छरों के दंश प्रयुक्त हुए। महावीर अडिग रहे। उनकी समूची देह को दीमकों की बांबी बना दिया गया। महावीर ध्यानस्थ रहे। बिच्छू-दंश, सर्प-दंश और गज-दंत के प्रहार हुए। महावीर अडोल रहे। जंगली हाथी ने उन्हें पांवों तले रौंदा। महावीर अविचलित रहे। भयभैरव ने उन्हें डराने के प्रयास किए। महावीर दृढ़ रहे। अप्सराओं ने काम जगाने की चेष्टा की। महावीर प्रतिमावत् रहे। उनके परिवारजनों के करुण-क्रन्दन उन्हें सुनाए गए। महावीर अनासक्त रहे। तोसली में संगम ने राजप्रासाद में चोरी कर उन पर आरोप सिद्ध करा कर उन्हें फांसी के तख्ते तक पहुंचा दिया। महावीर मौन तप-लोक में रमे रहे। सात बार उन्हें फांसी दी गई और सातों बार तख्ता हटते ही रस्सी टूटी। रस्सी अलग-तख्ता अलग। महावीर अखण्ड ध्यान बने रहे। उनके पांवों पर बरतन रख उसके नीचे आग जलाई और खीर पकाई गई। महावीर देहातीत रहे। प्रभावहीन उपसर्ग देते-देते संगम हार गया और क्षमा मांगकर जाने लगा। महावीर के नेत्र सजल हुए। कारण पूछने पर उन्होंने बताया, “जो कर्म-बन्ध तुमने मुझे उपसर्ग देते हुए किया है, उसका परिणाम तुम कैसे सहोगे? तुम्हारे दुःख की कल्पना कितनी हृदय-द्रावक है!” संगम ने सुना और वह पश्चात्ताप में डूब गया।

छम्माणि ग्राम के निकट साधना-काल के छोर पर पहुंचे महावीर के कानों में लकड़ी की कीलें ठोक दीं एक गोपालक ने। मध्यमा नगरी में सिद्धार्थ नामक वणिक के घर जब महावीर भिक्षार्थ गए तो वहां उपस्थित खरक नामक वैद्य ने उनके कानों से कीलें बाहर निकालीं। गोपालक के अनुसार उनका अपराध था—उसके बैलों की रक्षा न कर पाना और सतत

मौन रहना। रक्तरंजित महावीर की मुक्ति-साधना का यह अंतिम उपसर्ग था। तप-यात्रा का प्रथम उपसर्ग जिस कारण से महावीर ने सहा, उसी कारण से अन्तिम उपसर्ग भी सहा। काल-चक्र के साथ-साथ कर्म-चक्र भी पूर्ण हुआ। । ८

मातृ-जाति-उद्धारक महावीर ने संकल्प किया—वे संसार की सबसे दुःखी और पीड़ित स्त्री के हाथों अपना व्रत खोलेंगे। छह मास वीत गए। वे कौशाम्बी पहुंचे। इतिहास का अभूतपूर्व अभिग्रह धारण किए। उन्होंने एक नारी (चंदनबाला) को देखा। उसके साथ तेरह दुःखद स्थितियां बनी थीं : 1. अविवाहित कन्या 2. राजकुमारी 3. निरपराध 4. सदाचारिणी होकर कलंकिता 5. बन्दिनी 6. हाथों में हथकड़ियां व पैरों में बेड़ियां 7. मुण्डित सिर 8. तीन दिन से निराहार 9. खाने के लिए उड़द के उबले बाकुले सूप में लिए थी। 10. किसी अतिथि की प्रतीक्षा-रत 11. एक पांव देहली के बाहर और दूसरा अन्दर 12. मुख पर प्रसन्नता तथा 13. आंखों में आंसू। महावीर ने करुणा विगलित मन से उस नारी के हाथों आहार ग्रहण कर अपना व्रत खोला। घटना यूं थी—कौशाम्बी के राजा शतानीक के हाथों चम्पा के राजा दधिवाहन युद्ध में परास्त हुए और शतानीक के रथाध्यक्ष ने चम्पा की महारानी धारिणी व राजकुमारी वसुमति का धोखे से अपहरण किया। मार्ग में अपनी सतीत्व-रक्षा हेतु महारानी ने आत्महत्या कर ली और राजकुमारी को बाकु-जाल में फंसा रथाध्यक्ष अपने साथ ले आया। कौशाम्बी की एक वेश्या को उसे बेच दिया। वसुमति वेश्या के साथ न जाकर प्रतिवाद करने लगी तो कौशाम्बी के सेठ धनावह ने उसे खरीदा और पुत्री बना चन्दना नाम रखकर अपने घर ले आया। सेठानी मूला को एक बार अपने पति व वसुमति पर सदेह हुआ। पति की अनुपस्थिति में उसने चंदना का सिर मुंडवाया। हाथों में हथकड़ियां व पांवों में बेड़ियां पहनाई और तलधर में डाल दिया तथा स्वयं पीहर चली गई। तीन दिन बाद लौट कर सेठ ने चंदना को बाहर निकाला। देहली पर बैठाया। उस समय उपलब्ध सूप में रखे उड़द के बाकुले उसे दिए और हथकड़ी बेड़ियां काटने वाले लुहार को बुलाने चला गया। इसी समय महावीर वहां पहुंचे। महावीर ने देखा—संसार में इससे अधिक पीड़ित और कोई नहीं हो सकता। उस बाला (चंदनबाला) का उद्धार करने के लिए उन्होंने आहार ग्रहण किया। देवों ने 'अहो दानं-अहो दानं' का घोष करते हुए वहां रत्नों की वर्षा की। संयम-पथ पर कदम बढ़ाने को संकल्पित चंदना ने नया जीवन पाया।

जृम्भक ग्राम के सीमान्त प्रदेश में ऋजुबालुका नदी के तट पर श्यामक कृषक के खेत में शाल वृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ल दशमी के दिन गोदोहन आसन में (पांचों ज्ञानेन्द्रियों व पांचों कर्मेन्द्रियों को दो स्तनों के समान अपने सबल हाथों में आबद्ध किए) ध्यानलीन महावीर ने सभी पाप कर्मों का क्षय किया। कैवल्य पद पाया। सर्वज्ञ हुए। भिक्षु से वे भगवान् बन गए। देवों ने कैवल्य महोत्सव मनाया। सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश बन कर महावीर मध्य पावा पहुंचे। वहां सोमिल ब्राह्मण द्वारा आयोजित अभूतपूर्व यज्ञ के प्रयोजन से भारत के ग्यारह उद्भट विद्वान् अपने 4400 शिष्यों सहित इन्द्रभूति गौतम के नेतृत्व में आए हुए थे। महासेन उद्यान में भगवान् के समवसरण का प्रभाव देवलोक के समान पाया नगरी में भी प्रसारित हो गया। यज्ञ प्रभावहीन होने लगा तो इन्द्रभूति गौतम भगवान् को शास्त्रार्थ में पराजित करने के उद्देश्य से उद्यान में आए और भगवान् को देख-सुन कर वहीं रह गए। भगवान् के प्रथम शिष्यत्व का गौरव पाया। सोमिल का विशाल यज्ञ महावीर भगवान् के समवसरण में समाहित हो गया। यज्ञ में पधारे ग्यारहों उद्भट विद्वान् अपने चार हजार चार सौ शिष्यों सहित श्रमण संघ में दीक्षित हुए। भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए भगवान् ने साधना-श्रेणियों के अनुसार-साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका के रूप में चतुर्विध संघ की स्थापना की। उनके धर्म-संघ में चौदह हजार साधु, छत्तीस हजार साध्वियां, एक लाख उन्सठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएं थीं। □ □

भगवान् महावीर : धर्म-चक्र प्रवर्तन

—सुभद्र मुनि

भगवान् महावीर अपने युग में उसी तरह आये जैसे भ्रम में ज्ञान, हिंसा में अहिंसा, कर्मकाण्डवाद में वास्तविक मनुष्यत्व, कट्टरता में अनेकान्ती उदारता, वैषम्य में समता, दुराचार में सदाचार, लालच में अपरिग्रह, स्वार्थ में अचौर्य और तानाशाही में गणतंत्र आता है। अपने देश और काल में सार्थक मानवीय हस्तक्षेप का पर्याय थे महावीर, जिनका स्पर्श पा लेने के बाद विश्व-दृष्टि में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आया और विश्व-जीवन में भी। परिवर्तन के इस स्वरूप को पहचानना ही वस्तुतः भगवान् महावीर के योगदान को पहचानना है। जीवन का शायद ही कोई पक्ष ऐसा हो, जो उक्त परिवर्तन से अछूता रहा हो। इसका कारण यह है कि जीवन की नियामक शक्तियों (जीवन-दृष्टि और जीवन-पद्धति) में परिवर्तन घटित हुआ था। दृष्टि बदल जाने पर संसार का बदल जाना उसी तरह स्वाभाविक था, जैसे बारिश के बाद पेड़-पौधों में नवरूप का आना स्वाभाविक होता है।

महावीरकालीन धार्मिक परिवेश का सिंहावलोकन किया जाए तो स्पष्ट होगा कि वह समय प्रमुख रूप से या तो अज्ञान द्वारा संचालित था और या फिर स्वार्थी द्वारा। एक ओर अंधविश्वास का अजगर लगभग समूचे धर्मक्षेत्र पर पसरा था तो दूसरी ओर साम्प्रदायिक संकीर्णताएं उस समय के रास्तों पर कदम-कदम पर बिछी हुई थीं। यज्ञ प्रधान कर्म-काण्ड एवं पाखण्ड तदयुगीन उपासना के रूप थे। धर्म समाज के सम्पन्न व शक्तिशाली वर्ग का विशेषाधिकार बनकर वंचितों पर कोड़ों की तरह बरसता था। ऐसे में महावीर उपासना के सर्वसुलभ रूप लेकर प्रकट हुए। जन-जन को उद्बोधन देते हुए उन्होंने कहा, “अहिंसक यज्ञ के लिए आत्मा का अग्नि-कुण्ड बनाओ। उसमें मन, वचन और कर्म की शुभ प्रवृत्ति रूप घृत उड़ेलो। अनन्तर तप रूपी अग्नि के द्वारा दुष्कर्मों को ईंधन के रूप में जलाकर शांति रूप प्रशस्त होम करो।” आत्मा सबके पास थी। मन-वचन-कर्म की शुभ प्रवृत्तियां सबके पास थीं। वे घी आदि की तरह निर्धनों को दुर्लभ नहीं थीं। तप करने के लिए किसी प्रदर्शन प्रिय कर्म-काण्ड की आवश्यकता नहीं थी। अपने आपको जानने तथा पाने का यह यज्ञ संकल्प-मात्र से संभव था और वह भी प्रत्येक के लिए। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय के रूप में उपासना के जिन मार्गों की ओर महावीर ने संकेत किया, वे राजपथ नहीं जन पथ थे। आमंत्रित करते थे उन शूद्रों को, जिनके कान ज्ञान सुनने के अपराध में पिघले सीसे से भर दिये जाते थे; बुलाते थे उन स्त्रियों को, जिन्हें वस्तुओं की तरह इस्तेमाल किया जाता था। भगवान् महावीर की पहली क्रान्तिकारी देन थी—उपासना को सबका सहज अधिकार बना देना। उनकी दूसरी देन थी—नरबलि व पशु-बलि को अन्याय व अधर्म घोषित करते हुए प्राणिमात्र को अभय प्रदान करने की दिशा में यात्रा करना। इस यात्रा के दौरान प्राप्त ज्ञानात्मक अनुभव सभी को बांटते हुए भगवान् का कहना था कि जीवों के प्रति हिंसा अपने ही प्रति हिंसा है और जीवों के प्रति करुणा भी अपने ही प्रति करुणा है। ज्ञानी असल में वह है, जिसने हिंसा छोड़ दी। जीना सब चाहते हैं। भगवान् बोले, “जब तुम किसी मृत व्यक्ति को जीवन नहीं दे सकते तो उसे मारने का तुम्हें क्या अधिकार है?” हिंसा की विभीषिका से ग्रस्त समय में उन्होंने अहिंसा को परमधर्म बतलाया और जीव-मात्र के जीवन पर अधिकार की वकालत की। संवेदनशीलता में अपने आचरण से अर्थ भरते हुए पेड़-पौधों तक में जीवन बतया। उनके

संरक्षण पर बल देते हुए प्रकृति-सन्तुलन को बिगड़ने से रोका। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि बहुत बाद में जगदीश चन्द्र बसु के कहने पर विज्ञान को यह सत्य समझ में आया। प्रमाणित भी हो गई भगवान् की बात।

कष्टर अज्ञान द्वारा पोषित साम्प्रदायिक संकीर्णतायें अनेकान्तवाद ने तोड़ीं। किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, स्थिति या विचार को सभी संभव दृष्टियों से देखना ही वास्तव में पूर्णत्व को देखना है और यही है अनेकांतवाद। पूर्ण सत्य जानने का एकमात्र उपाय। भगवान् ने अपने युग में प्रचलित किसी भी विचारधारा को अमान्य नहीं किया। कहा कि समस्त विचारधारयें आंशिक सत्य लिए बहती हैं। आवश्यकता अंतर्नेत्रों द्वारा सभी का सत्य देखने और अपना सत्य पाने की है। अंधानुकरण परम्परा का भी व्यर्थ है और नवीन का भी। जिसे हम सत्य व उचित मानें, केवल उसी का व्यवहार करें। भगवान् द्वारा प्रतिपादित संकीर्णता और अतिवाद के विरोधी इस सिद्धान्त ने जन-जन में एकता व बन्धुत्व की स्थापना तो की ही, विभिन्न सम्प्रदायों के बीच सद्भाव व जनतांत्रिक व्यवहार पर भी बल दिया। स्पष्ट है कि आचरण में उतरने के लिए अहिंसा जो धैर्य मांगती है, अनेकांतवाद भी वही धैर्य मांगता है। दोनों ही आत्मिक शक्ति के स्रोत सिद्धान्त हैं। उल्लेखनीय तथ्य है कि संस्कृत को रौब जमाने की युक्ति के रूप में महावीर ने कभी नहीं अपनाया और जिस ज्ञान पर जीव-जीव का नैसर्गिक अधिकार था, उसे जन-भाषा में ही जन-जन तक पहुंचाया। विषमता भगवान् के समय में समाज का एक पुराना रोग बन चुकी थी। बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को निगल जाना ही उस समय का सामाजिक न्याय था। वर्णाश्रम व्यवस्था उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के बहुमुखी शोषण का मुख्य उपादान थी। ऐसे में वास्तविक लोक-नायक की भूमिका निभाते हुए महावीर ने दृढ़तापूर्वक स्थापित किया कि श्रेष्ठता का मापदण्ड वंश नहीं, कर्म है। अमानवीय कार्यों में रत ब्राह्मण भी शूद्र है और मानवीय श्रम का गौरव शूद्र भी ब्राह्मण है। ध्यान देने योग्य बात है कि यह खोखला सिद्धान्त-मात्र नहीं था, एक यथार्थ सत्य था। आर्द्रकुमार जैसे आर्यतर जाति के युवकों को उन्होंने अपने मुनि-संघ में दीक्षा दी थी। हरिकेश जैसे चाण्डाल कुलोत्पन्न मुमुक्षुओं को अपने भिक्षु-संघ में वही स्थान दिया था, जो ब्राह्मण श्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम को मिला था। भगवान् महावीर की यह अखण्ड मान्यता थी कि कोई भी व्यक्ति समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है और तप से तपस्वी होता है। मनुष्य अपना भाग्य स्वयं बना सकता है, यह कहकर महावीर ने उस भाग्यवाद को भी आईना दिखाया जो वंचितों को निष्क्रिय बनाकर वंचकों का काम आसान करता था। वंचितों को दास-दासियों की तरह खरीदने और बेचने वाले समाज में भगवान् महावीर ने अपने साध्वी संघ की प्रमुख चन्दनबाला को बनाया, जिसे निष्प्राण वस्तु की तरह खरीदा-बेचा जा चुका था। नारी-स्वतंत्रता व क्षमता के पक्ष में भगवान् के आचरण का यह सशक्त तर्क व न्याय है। साध्वी संघ में छत्तीस हजार साध्वियों का और श्राविका संघ में तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं का होना वस्तुतः भगवान् की ओर से इस भ्रम का दो टूक खण्डन है कि स्त्री मात्र भोग्या या दासी ही हो सकती है। यह भगवान् महावीर की अत्यंत महत्त्वपूर्ण सामाजिक देन है। अहंकार, क्रोध, प्रमाद (विषयासक्ति), रोग और आलस्य को अशिक्षा के कारण बताते हुए उन्होंने ज्ञान को श्रद्धा और आचरण से जोड़ा। जीवन के शैक्षिक पक्ष को यह उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अपने समाज के वर्ग-वैषम्य का आधार महावीर ने परिग्रह को माना। आवश्यकता से अधिक संग्रह को उन्होंने सामाजिक अपराध बताया। इस अपराध के कारण ही स्थिति यह थी कि बच्चों को दूध चाहे मिले न मिले, यज्ञ को घी अवश्य मिल जाता था। इसी ऐतिहासिक परिस्थिति की पीड़ा भगवान्-प्रदत्त अपरिग्रह जैसे मूल्य की जननी बनी। कामनाओं को मृत्यु घोषित करते हुए वे बोले—कल की वह सोचे जिसे कभी न मरना हो। मरना सबको है इसलिए संचय कैसा? कर्म-फल प्रत्येक को भोगने हैं इसलिए संचय क्यों? स्पष्ट है कि इन बातों ने उस समय के व्यक्ति-चरित्रों से दुर्गुणों का कूड़ा-करकट साफ करने में उल्लेखनीय भूमिका अभिनीत की। घृणा, क्रोध, हिंसा, ईर्ष्या, लोभ, व्यभिचार आदि की जड़ों को उखाड़ा। प्रेम, करुणा, अहिंसा, साम्य, क्षमा, अस्तेय, अपरिग्रह, आदि को असंख्य व्यक्तियों की भाव-भूमि पर रोपा

और सींचा। व्यक्ति-सुधार से समाज-सुधार की राह पर अथक यात्रा की। इहलौकिक जीवन से पारलौकिक जीवन कैसे बनता और बिगड़ता है, यह समझाया। अपने समय की राजनीति में जमीन, स्त्री या वीरगति के लिए होने वाले युद्धों की प्रमुख भूमिका को पहचान कर कहा—दूसरों को नहीं, अपने को जीतो। जो संघर्षों को जन्म देता हो, वह अधर्म है। शक्ति व सामर्थ्य के गुण हैं—शान्ति और क्षमाशीलता। इन मूल्यों से उस समय के अनेक राजाओं की सोच भी बदली और कार्यनीति भी। अनेक जनपदों में गणराज्य की नींव पड़ी। राजनीति में सह-अस्तित्व और आपसी सहयोग महत्त्वपूर्ण हुए।

इच्छाओं की तानाशाही के स्थान पर ज्ञान का गणराज्य भगवान् महावीर ने अपने मन-वचन-कर्म से लेकर अपने युग तक प्रसारित किया। श्रेष्ठ जीवन-आदर्शों को धर्म बताया और ऐसा चतुर्विध-संघ बनाया, जो धर्म पर आधारित उत्कृष्ट समाज-व्यवस्था हो। ऐसे भगवान् महावीर को कोटि-कोटि वन्दन! □ □

भगवान् महावीर : एक विचार

—सुभद्र मुनि

“अप्पणो णामं एगे पत्तियं करेइ, णो परस्स।
परस्स णामं एगे पत्तियं करेइ, णो अप्पणो।
एगे अप्पणो पत्तियं करेइ, परस्स वि।
एगे णो अप्पणो पत्तियं करेइ, णो परस्स।”

अर्थात् इस संसार में कुछ मनुष्य केवल अपना भला करते हैं, दूसरों का नहीं। कुछ अपना भला न करते हुए भी दूसरों का भला करते हैं। कुछ, अपना भी भला करते हैं और दूसरों का भी। कुछ ऐसे होते हैं जो न अपना भला करते हैं और न ही दूसरों का। चारों ओर देखें तो चारों ही प्रकार के मनुष्य न्यूनाधिक संख्या में दृष्टिगत होते हैं। दृष्टिगत यह भी होता है कि ऐसे लोग अपेक्षाकृत अधिक होते जा रहे हैं जो या तो केवल अपना भला चाहते हैं और या फिर किसी का भी नहीं। आत्मकेन्द्रित स्वार्थ एक विराट् दैत्य के समान नैतिक मूल्यों को निगलता जा रहा है। विचारणीय तथ्य यह है कि नैतिकता की बड़े पैमाने पर हो रही इस हिंसा से बहुत कम मनुष्य विचलित होते हैं। अधिकतर लोग ज्ञात-अज्ञात रूप से इस हिंसा को उचित मानने लगे हैं। नैतिकता की याद उन्हें प्रायः उसी समय आती है जिस समय उनके आत्मकेन्द्रित स्वार्थ खतरे में पड़ते हैं। कुछ लोग तो ऐसे भी हैं जो आत्मकेन्द्रित स्वार्थ के दैत्य को उचित ठहराते हैं। उसके पक्ष में तर्क-वितर्क करते हैं। उसका सम्मान करते हैं; उसकी पूजा करते हैं।

अकारण नहीं है कि देश के आकाश पर छोटे-बड़े अग्नि-वर्षी बादलों की तरह इतने पाप छा गये हैं कि उनकी सही-सही संख्या भी अधिकांश लोग भूल चुके हैं। ऐसे में याद आती है प्रभु की यह देशना, “सद्गृहस्थ सदा धर्मानुकूल ही अपनी आजीविका करते हैं,” ऐसे में याद आता है कि प्रभूत सम्पत्ति के स्वामी होते हुए भी प्रभु ने उसका अंतिम रूप से त्याग करने से पूर्व ‘वर्षीदान’ के रूप में उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग किया था। दूसरों की दरिद्रता से उपजती पीड़ा अपने रोम-रोम में अनुभव करते हुए वे दीक्षा लेने से पूर्व एक वर्ष तक निरन्तर प्रतिदिन एक करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्रायें बांटते रहे। एक वर्ष की कालावधि में उन्होंने तीन अरब अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण-मुद्राओं का दान किया। क्यों किया? जिन स्वर्ण-मुद्राओं के लिये युद्ध होते रहे, रक्तपात होता रहा, अपराध होते रहे, असंख्य मनुष्यों के जीवन समाप्त होते रहे, नैतिकता नीलाम होती रही, उन्हीं को प्रभु ने सूखी घास की तरह बांट दिया। उनका तिनके की तरह त्याग कर दिया। क्या कारण था इसका? कारण यह था कि उन्होंने सम्पत्ति का चरित्र पूरी तरह जान लिया था। वे समझ गये थे कि “धान्यों, सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त करने में असमर्थ है।” वर्तमान युग का अधिकांश भाग इस सत्य को समझते हुए भी नहीं समझता, यह इसका दुर्भाग्य है। इसी का परिणाम है कि मनुष्य समाप्त हो जाता है परन्तु धन सम्पत्ति के लिये निरन्तर बढ़ती उसकी लालसा समाप्त नहीं होती। इस लालसा की दासता स्वीकार कर वह

इसके लिये जी सकता है। इसके लिये मर सकता है। काश कि वह इस दासता से स्वतन्त्र हो सकता। काश कि वह समझ पाता प्रभु-वाणी का यह त्रिकाल-व्यापी सत्य—“यदि यह सारा जगत् और सारे जगत् का धन भी किसी को दे दिया जाय तो वह उसकी रक्षा करने में असमर्थ है।” मृत्यु आयेगी तो जाना ही होगा। मृत्यु के सामने चक्रवर्ती सम्राट् भी असहाय हो गये। अपार धन-सम्पदा के स्वामी...और इतने बेबस...!

अपनी बेबसी का जन्मदाता मनुष्य स्वयं है। मनुष्य वास्तव में कितना स्वाधीन है, यह उन बंधनों से ज्ञात होता है, जिन्हें वह मन-वचन कर्म से मुक्ति मानता है। वह शान्त जीवन में अनन्त धन-सम्पदा संचित करने को मुक्ति का अथवा अक्षय आनन्द का स्रोत मानता है। भूल जाता है कि इस प्रक्रिया में वह धन सम्पदा का स्वामी नहीं रहता अपितु धन उसका स्वामी हो जाता है, वह धन को खर्च नहीं करता अपितु धन उसे खर्च करता रहता है। एक दिन पूरी तरह खर्च कर देता है। धन का पूर्ण तृप्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। धन का सम्बन्ध है—तृष्णा से। धन का तो स्वभाव ही है कि वह जितना बढ़ता है, उतनी ही अपने लिये प्यास भड़काता है। धन अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ता। मनुष्य अपना स्वभाव छोड़ देता है और एक बार उसने अपना स्वभाव (अर्थात् मनुष्यता) छोड़कर धन को जीवन में प्रवेश की अनुमति दी नहीं कि धन ने तृष्णा के रेशमी धागों से बुने जाल में उसे दबोचा। दबोचने में वह जरा भी देर नहीं करता। एक वार जाल में फंस जाने के बाद मनुष्य उसके रेशमी स्पर्श में मुग्ध रहने लगता है। रेशमीपन से हट कर उसका ध्यान जाल के बन्धन पर प्रायः नहीं जाता। फिर उसे रेशमी स्पर्श तो अनुभव होता है परन्तु बंधन अनुभव नहीं होता। यहां तक कि उसे वह बंधन ही मुक्ति प्रतीत होने लगता है। वह जाल के इस छोर से लेकर उस छोर तक दौड़ लगाता है और समझता है कि दुनिया इतनी ही है। मुक्ति का अर्थ है—जाल के अधिक से अधिक रेशमीपन पर आधिपत्य स्थापित करना। इसके लिये जाल में फंसे अन्य व्यक्तियों से निरन्तर संघर्ष करना और येन-केन-प्रकारेण विजय पाना। विजय के उत्सव मनाना। स्वाधीनता के समारोह आयोजित करना। यदि आधुनिक राष्ट्र के प्रतिनिधि नागरिक की स्थिति ऐसी ही है तो स्पष्ट है कि वास्तविक स्वाधीनता से वह जन्मों दूर है।

स्वाधीन वह होता है जो आत्मनिर्भर हो। आत्मनिर्भर वह होता है, जिसके आनन्द का स्रोत बाहर की दुनिया में कहीं न हो। वह इतना समर्थ हो कि स्वयं ही अपने आनन्द का स्रोत हो सके। तभी उसका आनन्द अबाध होगा। अखण्ड होगा। अक्षय होगा। अबाध, अखण्ड और अक्षय आनन्द होने का उपाय एक ही है—सांसारिकता का त्याग। तृष्णाओं का त्याग। शारीरिकता का त्याग। भोग का रास्ता अक्षय आनन्द तक नहीं जाता। केवल त्याग का ही रास्ता है, जो वहां तक जाता है। जीवन में जितना त्याग होगा, उतनी ही स्वाधीनता होगी, और उतना ही अभय होगा। वर्तमान मनुष्य को भाँति-भाँति के भय दबोचे हुए हैं। उसे भय है कि कोई उसकी धन-सम्पदा लूट न ले। भय है कि उसके सुख के लिये काम करने वाले कहीं बदल न जायें...कहीं मृत्यु उन्हें उससे छीन न ले। कहीं कोई उसे मूर्ख न बना दे। कहीं कोई उसके माध्यम से अपना उल्लू सीधा न कर ले। कहीं वह आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक मोर्चों पर पराजित न हो जाये। कहते हैं कि आदमी चाहे सारी दुनिया घूम ले परन्तु चैन उसे अपने घर आकर ही मिलता है। आज के मनुष्य को तो घर में भी चैन नहीं है। उसे भय है कि कहीं उसका भाई ही उसकी पीठ में छुरा न भोंक दे। कहीं उसकी पत्नी उसे दगा न दे जाये! अविश्वास और भय में निरन्तर जीते हुए वह भूल जाता है कि इस तनाव का मूल कारण है—केवल अपने सुखों से लगाव। उसे अपने शरीर के सुखों से लगाव है। वह स्वयं को देह मात्र समझता है। शरीर के सम्बन्धों को ही वह अपने सम्बन्ध मानता है। उन्हीं के लिये जीता-मरता है। पारेग्रह, भोग, हिंसा और लूट-खसोट का असत्य ही उसके जीवन का सत्य बनता जा रहा है। वह दूसरों को डराकर स्वयं भयमुक्त होना चाहता है। दूसरों को दरिद्र कर स्वयं वैभवशाली होना चाहता है। दूसरों से बेईमानी कर अपेक्षा करता है कि दूसरे उसके साथ ईमानदारी ही बरतें। प्रभु की यह बात उसके ध्यान में नहीं आती कि “जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है। अर्थात् उसकी और तेरी आत्मा एक समान है।” यदि

यह बोध जाग जाये तो सभी असुरक्षाओं से वह स्वाधीन हो जाये। सभी संशयों से उसे मुक्ति मिल जाये। सभी दुःखों से उसकी चेतना और उसका जीवन स्वतन्त्र हो जाये। धन्य हो जाये।

खेद का विषय यह है कि यह बात एक मंगल-कामना तो हो सकती है, परन्तु वास्तविकता नहीं बन पा रही। वास्तविकता यह है कि 'जैसे को तैसा' या 'खून का बदला खून' जैसे अमानुषिक सिद्धान्त जीवन के नियामक विचार बनते जा रहे हैं। यही विचार समाचार-पत्रों की रक्तरंजित सुर्खियां बन कर आये दिन हमारी संवेदनाओं को झकझोरते रहते हैं। भगवान् महावीर इन विचारों को त्याज्य मानते थे। केवल मानते ही नहीं थे, इस त्याग को जीते भी थे। उनकी साधना की एक-एक सांस ने 'खून का बदला खून' जैसे सिद्धान्त का अहिंसक प्रतिरोध किया। यक्षायतन में साधनालीन महावीर को शूलपाणि यक्ष ने दिशाओं को कंपाने वाली हुंकार से आतंकित करने की चेष्टा की, तरह-तरह से उन्हें नोंचा, हाथी बनकर उन्हें पांवों तले रौंदा, सिंह बनकर उनकी देह में नाखून और दांत गड़ाये, सर्प-बिच्छू बनकर विषैले डंक मारे तो बदले में क्रोध नहीं पाया। प्रतिशोध नहीं पाया। धमकियां नहीं पाईं। पाया तो क्षमा...केवल क्षमा का ऐसा अमृत, जिसे उसने पहली बार चखा था। पाया तो यह ज्ञान कि "अग्नि से कभी अग्नि शान्त नहीं होती। वैर से कभी वैर नहीं मिटा करते। पानी से ही अग्नि शान्त होती है। मैत्री से ही वैर बुझ सकता है।" इस ज्ञान से शूलपाणि यक्ष के जन्म-जन्म का क्रोध शान्त हो गया। वह सभी को क्षमा और अभय का अमृत बांटने लगा। स्वाधीनता की राह पर वह चल पड़ा। महावीर देहासक्त होते तो यह संभव नहीं हो सकता था। वे देह मात्र नहीं थे। वे सहनशीलता थे। समता थे। क्षमा थे। मनुष्यता का सार तत्व थे। केवल 'स्व' के अधीन होने के कारण स्वाधीन थे। इसीलिये आतताइयों को भी क्षमा की प्रतिमूर्ति बना सके। स्पष्ट है कि 'खून का बदला खून' के स्थान पर उनका जीवन-मूल्य था—'यातना का बदला करुणा'।

आज के युग में, जब बहुत-से तथाकथित मनुष्य 'ईंट का जवाब पत्थर' मानते हैं, तब भगवान् महावीर के 'विष का जवाब दूध' को याद करना अपरिहार्य हो जाता है। चण्डकौशिक नामक दुर्दान्त सर्प के कारण जिस राह से लोगों ने गुजरना छोड़ दिया था, महावीर लोगों द्वारा सचेत किये जाने पर भी उसी राह पर आगे बढ़े थे। सर्प की बांबी के पास जाकर ध्यानस्थ हो गये थे। मानो कह रहे हों, "लो! मैं प्रस्तुत हूँ। अपने जन्म जन्मांतर का क्रोध मुझ पर उतार दो। पर तुम क्रोध से मुक्त हो जाओ। सभी को अभय दो।" सर्प ने महावीर को चुनौती समझ कर उन पर अपनी विषैली फूँकार छोड़ी, दृष्टि विष से उन्हें दग्ध करने का प्रयास किया, उनके पांव में सर्वघाती डंक मारा परन्तु पांव से खून के स्थान पर दुग्ध निकल आया। इस प्रकार महावीर के जीवन में चरितार्थ हुआ—'विष का जवाब दूध।' विष, दूध को विषैला नहीं बना सका। दूध ने विष को अहिंसक व सदाचारी बना दिया। सिद्ध हुआ कि दूध में विष से कहीं ज्यादा शक्ति होती है। यह शक्ति क्षमा और अभय का अनश्वर जीवन प्रदान करती है। बस! इस शक्ति को आजमाने का संकल्प चाहिये। हौंसला चाहिये। तभी मनुष्य स्वाधीन भाव से 'ईंट का जवाब पत्थर' जैसे सिद्धान्त का अहिंसक व सार्थक प्रतिरोध कर सकता है। प्रभु ने ऐसा किया और पापी के मन में पाप से विरक्ति जगा दी। मनुष्यों की तो बात ही क्या...उनसे सम्बोधि पाकर चण्डकौशिक जैसे तिर्यंच भी जागे। ऐसे जागे कि फिर कभी नहीं सोये। पाप से मुंह मोड़ा तो ऐसा मोड़ा कि मुड़कर भी उसकी ओर नहीं देखा। पाप की हिम्मत नहीं हुई कि वह महावीर के जगाये जीवों के जीवन में पल-भर को झांक भी पाये। महावीर आये तो कषायों की गुलामी चली गई। पाप चला गया। असंख्य मनुष्यों ने भयमुक्त होकर खुली हवा में सांस ली। स्वाधीनता को अपनी सांसों में अनुभव किया।

जो स्वयं स्वाधीन न हो वह किसी को स्वाधीन बना भी नहीं सकता। महावीर की स्वाधीनता को मन-वचन काया से अपनाने वाले मनुष्य अपेक्षाकृत कम हैं। यही कारण है कि वे स्वाधीनता का वितरण व प्रसार भी नहीं कर पाते। लोभ ने उन्हें पराधीन बना दिया है तो वे लोभ का प्रसार करते हैं। उस लोभ का जो मनुष्य के "सभी सद्गुणों का विनाश

कर देता है।" लोभ के ही वशीभूत मनुष्य धन संपदा के लिये चालाकियां करते हैं। प्लॉटों, मकानों, कोठियों व बंगलों पर अनधिकार कब्जा करते हैं। जायदाद के कागजों की जालसाजी करते हैं। इसके विपरीत महावीर का जीवन देखिये। राजा सिद्धार्थ के मित्र ऋषि दुइज्जंत ने मोराक सन्निवेश स्थित अपने आश्रम में भिक्षुक महावीर से अपना प्रथम वर्षावास व्यतीत करने की प्रार्थना की। महावीर उसे स्वीकार कर चातुर्मासारम्भ में वहां आये। एक कुटी में उन्हें ठहराया गया। उस वर्ष भयानक सूखे के कारण पशुओं को चारा दुर्लभ हो गया। गायें आश्रम की कुटियों की सूखी घास-पुराल आदि खाने लगीं। सभी ऋषि लाठियां लेकर अपनी-अपनी कुटियों की रक्षा करने लगे परन्तु महावीर ने ऐसा नहीं किया। अन्य ऋषियों से शिकायतें पाकर दुइज्जंत ने महावीर को उपालम्भ दिया। कहा, "तुम कैसे क्षत्रिय-पुत्र हो? अपनी कुटी की रक्षा तक नहीं कर सकते?" यह सुनते ही महावीर ने पांच प्रतिज्ञायें की और चल पड़े। वे प्रतिज्ञायें थीं—अप्रीतिकर स्थान पर न ठहरना, सतत ध्यानलीन रहना, मौन रहना, केवल कर पात्र में भिक्षा लेना और गृहस्थ के आदर सत्कार से निरपेक्ष रहना। उस समय चातुर्मास के केवल पन्द्रह दिन बीते थे। उन्होंने यह नहीं सोचा कि शेष चातुर्मास कहां व्यतीत होगा? यह नहीं सोचा कि सिर पर छत भी नसीब होगी कि नहीं। यही चिन्ता होती तो वे अपने महल ही क्यों छोड़ते? जिसने महल छोड़ दिये, उसके लिये एक कुटिया को छोड़ना क्या कठिन था! वे समझ चुके थे कि कोई भी छत उनके सिर पर सदैव छांव करने में समर्थ नहीं है। इसीलिये सुरक्षा से उन्होंने अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। सुरक्षा से सम्बन्ध टूटा तो असुरक्षा से अपने-आप टूट गया। जिसका कुछ नहीं होता, वास्तव में उसी का सब कुछ होता है। जो किसी का नहीं होता, जो अपना भी नहीं होता, वही सबका हो सकता है। सांसारिक छतें महावीर के सिर पर नहीं रही तो पूरा आकाश उनके लिये छत बन गया। एक घर छूटा तो सम्पूर्ण प्रकृति उनका घर बन गई। वे घरों और छतों से स्वाधीन हो गये। लोभ-मोह से स्वाधीन हो गये। सांसारिकता से स्वाधीन हो गये।

अहंकार से भी स्वाधीन थे वे। एक-दूसरे की टांग खींचने और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के अवसर ढूंढने वाले सम्बन्धों के वर्तमान युग में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि महावीर की दृष्टि केवल अपना कल्याण करने तक सीमित कभी नहीं रही। जिन्होंने उन पर घोर अत्याचार किये, उनका भी उन्होंने उद्धार ही चाहा। संगम देव ने जब साधनालीन महावीर की दृढ़ता परखी तो तेज हवा चलाई, काली धूल से भरी आंधी चलाकर उन्हें धूल के ढेर में दबा दिया, विषैली चींटियों और मच्छरों के आक्रमण उनकी देह पर कराये, दीमकें चिपटाई, बिच्छू-सर्प-हाथी के प्रहार कराये, भयभैरव बनकर उन्हें डराया, देवांगनाओं के प्रयोग से उन्हें विचलित करना चाहा, उनके विषय में मिथ्या आरोप प्रचारित कर उन्हें फांसी के तख्ते तक पहुंचाया, उनके पांवों से सटाकर लकड़ियां सुलगाई और उस पर खीर बनाई परन्तु महावीर अडोल रहे। पराजित होकर जब संगम जाने लगा तो क्षमा के सुमेरु महावीर की आंखें यह सोचकर डबडबा आई कि जो कर्म संगम ने बांधे हैं, जब इनका उदय होगा तो इस पर क्या गुजरेगी! ध्यातव्य है कि भयंकरतम यातनायें सहते हुए महावीर की दृष्टि अपनी पीड़ा पर नहीं, संगम के बंधते हुए कर्मों पर थी। अपनी देह का दुःख तो उनके लिये दुःख ही नहीं था। दुःख था तो केवल यह कि अत्याचारी का उद्धार कैसे होगा! परम मनुष्यता के इस उदाहरण से सृष्टि में ऐसा कौन है, जो कुछ सीख नहीं सकता? कौन है जो सीख कर मानवीय स्वाधीनता का चरम शिखर छू नहीं सकता? कौन है जो मिट्टी से पैदा होकर भी आसमान नहीं हो सकता? कोई भी हो सकता है परन्तु इसके लिये अपने व्यक्तित्व को ऐसे स्थान में रूपान्तरित करने वाला सम्यक् ज्ञान दर्शन-चरित्र चाहिये, जिसके भीतर अप्रिय पक्षी भी उड़ान भर सकें।

आज सम्यक् ज्ञान दर्शन चरित्र का आलम यह है कि रातों-रात दल बदल जाते हैं। आस्थायें बदल जाती हैं। सत्य बदल जाता है। चारित्र बदल जाता है और इस बदलाव को ज्ञान संचालित नहीं करता। इसे संचालित करती है सत्ता लिप्सा। चुनावों के दौरान वोट के लालच में राजनेता क्या-क्या नहीं कर गुजरते! शायद ही कोई ऐसा चुनाव हो, जिसमें असत्य का प्रयोग न हुआ हो, आस्थाओं का व्यापार न हुआ हो, छल-प्रपंच न हुआ हो और तरह-तरह की हिंसा का सहारा न

लिया गया हो! यह सब किसलिये? सत्ता और अधिकार-लिप्सा की पूर्ति के लिये। भिक्षु जीवन अंगीकार करने के बाद महावीर पर सबसे पहला संकट तब आया था जब कर्मार ग्राम की सीमा पर वे ध्यानलीन हुए। एक किसान अपने बैलों को उनके पास यह कहकर छोड़ गया कि 'उन्हें देखते रहना। मैं अभी आया।' मुहूर्त भर बीतते ही वह लौटा तो देखा कि बैल वहां नहीं हैं। रात-भर बैलों को खोजा। सुबह देखा तो बैल महावीर के पास ही चर रहे हैं। सोचा कि इसी ने बैलों को छिपा दिया होगा। उसका क्रोध भड़क उठा। उसने रस्सियों से तत्काल एक कोड़ा बनाया और लगा महावीर को तड़ातड़ा पीटने। महावीर अडोल रहे। इन्द्र डोल गया। वह आया और किसान का हाथ पकड़ लिया। साधक महावीर पर आया प्रथम उपसर्ग टल गया। इन्द्र ने साधना-काल में सदैव उनके साथ रहने की प्रार्थना की परन्तु स्वावलम्बी महावीर ने साफ-साफ मना कर दिया। वे चाहते तो स्वर्ग के राजा को अनुचर बना सकते थे। उसके माध्यम से सत्ता-सुख व अधिकार लिप्सा को सन्तुष्ट कर सकते थे परन्तु लिप्सा तो दूर, वे अपनी छोटी-बड़ी इच्छाओं तक को जीत चुके थे। जब इच्छा ही न हो तो कैसी पूर्ति! कैसा भटकाव! कैसा समझौता! कैसी चिन्ता! कैसी दासता!

भगवान् महावीर का जीवन इच्छाओं की दासता से मुक्त था। कभी उनकी इच्छा नहीं हुई कि लोग उनके ज्ञान, उनके त्याग और उनकी साधना से प्रभावित हों। उनके गुण गायें। बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी यशोलिप्सा से हार गये पर महावीर से यश की इच्छा हार गई। गोशालक उनका स्वयंभू शिष्य बना। उनसे तेजोलेश्या की शक्ति प्राप्त की और इधर-उधर उस शक्ति का प्रदर्शन कर उसने खूब वाह-वाही लूटी। यश पाया। शिष्य बनाये। सेवा करवाई। इसके विपरीत महावीर ने जब दीक्षा ली तो यह संकल्प भी लिया कि "मैं जब तक पूर्णत्व को प्राप्त नहीं कर लूंगा, तक तक किसी को उपदेश नहीं दूंगा।" बारह वर्ष से भी अधिक साधना-अवधि में वे मौन रहे। थोड़े से ज्ञान से छलकते रहने वाले घड़े जैसे स्वभाव वाले गोशालक तो आज भी बहुत मिल जायेंगे परन्तु महावीर एक भी मिलेगा। महावीर नहीं तो महावीर-पथ का सच्चा पथिक तो हुआ ही जा सकता है। सच्चे पथिक भी कम हैं, जो बड़बोलेपन पर नहीं, मौन एवम् निष्काम साधना पर भरोसा करें। जिन्हें बलात्कार के घृणित समाचार पढ़कर महावीर का ब्रह्मचर्य याद आये। जो अपने जीवन को स्वाधीनता के उच्चतम मानवीय मूल्यों की व्याख्या बना सकें। जो व्यक्ति की सच्ची स्वाधीनता के आधार स्रोत हो सकें।

व्यक्ति की स्वाधीनता के सुमन विषमता की बंजर जमीन पर नहीं खिला करते। समता की उर्वर भूमि में ही इतनी सामर्थ्य होती है कि वह उन्हें खिला सके। संविधान में उल्लिखित होने भर से राष्ट्र में समता नहीं आती। राष्ट्र में समता तब आती है जब वास्तव में सभी को समान अधिकार हों। सभी के पास आगे बढ़ने के समान अवसर हों। किसी आधार पर कोई भेद-भाव न हो। भगवान् महावीर का धर्म-संघ आदर्श समाज का समर्थ प्रतीक है। हरिकेश मुनि उस समय के समाज में शूद्र कहलाते थे, जिनका प्रभु के धर्म-संघ में सम्मानजनक स्थान था। इन्द्रभूति गौतम और हरिकेश मुनि प्रभु के संघ में आकर ब्राह्मण और शूद्र नहीं रह गये थे। दोनों ही उनके अनुयायी बन गये थे। उनका अनुसरण कर मुक्ति को प्राप्त हुए थे। जिस स्त्री को उनके समय के समाज में खरीदा और बेचा जा चुका था, वह चंदन बाला उनके साध्वी संघ की प्रमुख थी। प्रभु के संघ में साध्वियों व श्राविकाओं की संख्या साधुओं व श्रावकों से कहीं अधिक थी। यह तथ्य इस सत्य का भी सूचक है कि समाज ने जो उपेक्षा और प्रताड़ना स्त्रियों को दी थी, उसका प्रभु के संघ में सर्वथा अभाव था। स्त्रियों ने पुरुषों के ही समान, और अनेक अवसरों पर तो पुरुषों से भी आगे बढ़कर, आत्म कल्याणार्थ कठोर साधनायें कीं। प्रभु का धर्म संघ वास्तव में रत्नाकर था, जिसमें अनेक रंगों की नदियां आकर तो मिलीं परन्तु मिलने के बाद सभी का एक ही रंग हो गया। संयम का रंग। समता का रंग। स्वाधीनता का रंग।

वाद-विवाद और कलह इस रंग में शामिल नहीं थे। इस रंग का आलोक था—संवाद। विजय अथवा पराजय उस संवाद के न उद्देश्य थे, न परिणाम। ज्ञान ही उसका उद्देश्य था। ज्ञान ही उसका परिणाम था। जैन धर्म का सम्यक् ज्ञान उन संवादों के कारण ही सृष्टि को उपलब्ध हुआ, जो भगवान् महावीर के युग में संभव हुए। कभी यह संवाद सर्वज्ञ प्रभु

और महामनीषी गौतम के मध्य गतिशील रहा तो कभी सुधर्मा स्वामी व जम्बू स्वामी के मध्य। भगवान् महावीर की परम्परा के गौतम तथा भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के केशी श्रमण के बीच होने वाला संवाद स्वस्थ वार्ता का विशिष्ट उदाहरण है। स्वस्थ वार्ता की इस शृंखला में और भी अनेक कड़ियाँ आकर जुड़ीं। स्कंधक परिव्राजक व गौतम, भगवान् महावीर व असुरराज चमरेन्द्र, भगवान् व शिवराजर्षि तथा भगवान् व परिव्राजक कालोदायी के बीच जैसे सम्बन्ध थे, वे सर्वोत्कृष्ट मानवीय सम्बन्धों के जगमगाते उदाहरण हैं। अपने से भिन्न मान्यता रखने वालों के प्रति कही कोई पूर्वाग्रह दिखाई नहीं देता। दिखाई देता है तो अज्ञान के अंधकार से बाहर आने का ईमानदार प्रयास और ज्ञान को सम्यक् रूप देने की साम्प्रदायिकता रहित कोशिश। राग-द्वेष के अज्ञान व मल से ये सभी सम्बन्ध मुक्त हैं। सत्य का निःसंकोच स्वीकार व कथन इनकी विशेषता है। यह विशेषता बताती है कि प्रभु के धर्म-संघ का स्वरूप साम्प्रदायिक नहीं था। विषमता ग्रस्त नहीं था। सम्यक्त्व से आलोकित एवम् समता पर आधारित स्वरूप था वह।

समता चाहे व्यक्ति में हो या राष्ट्र में, वह मनुष्यता का गौरव ही होती है। अपने-पराये का भेद वह समाप्त कर देती है। विषमता को निर्मूल कर देती है। राग-द्वेष के बंधनों का अन्त कर देती है। शारीरिकता की संकीर्णता से जीव को बाहर निकालती है। उसे ऐसी स्वाधीनता की ओर उन्मुख कर देती है, जिसे प्राप्त कर वह मृत्यु से भयभीत होना छोड़कर मृत्यु का स्वागत करने के योग्य बन जाता है। फिर उसकी मृत्यु एक महान् और नये जीवन में प्रवेश बन जाती है। फिर उसका जीवन अपनी तथा दूसरों की स्वाधीनता का महाकाव्य बन जाता है। मित्रता-शत्रुता की विभेदक रेखायें जहाँ समाप्त हो जायें, वहीं अहिंसा का सूर्य उगता है। जहाँ अहिंसा का सूर्य उगे, वहाँ अस्त्र-शस्त्रों का अंधकार तिरोहित हो जाता है।

भगवान् महावीर अहिंसा का सूर्य थे। वे न तो कभी अस्त हुए, न होंगे। इसलिये कि उनका प्रकाश असंख्य आत्माओं में व्याप्त रहा है, और रहेगा। सूर्य कभी अस्त नहीं होता। वह तो पृथ्वी के एक अंश से दूसरे अंश की ओर अपनी यात्रा निरन्तर जारी रखता है। भगवान् महावीर की आलोक यात्रा जारी है। जारी रहेगी। फिर उनके निर्वाण को महाजीवन का आरम्भ क्यों न माना जाय!

□ □



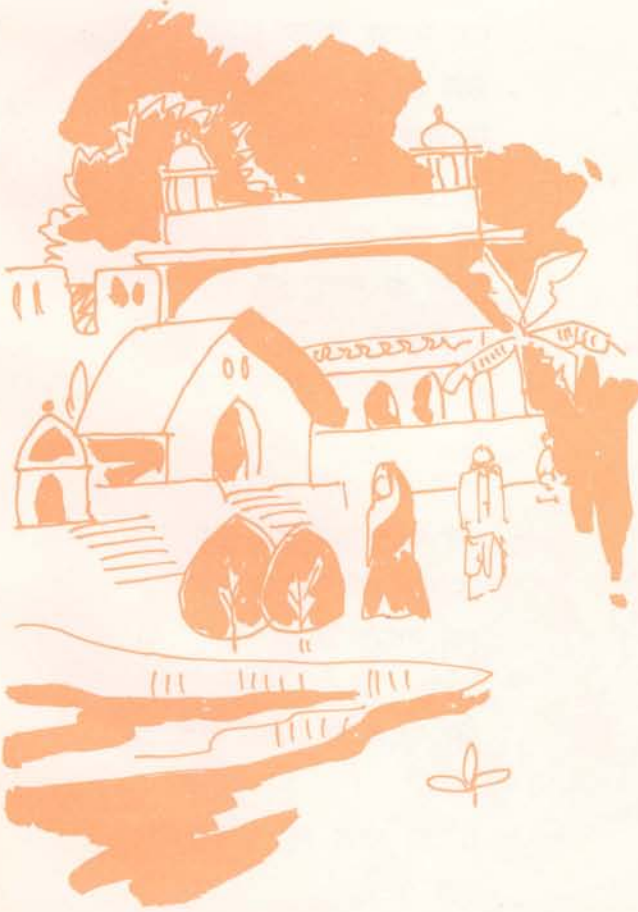
जन्म : एक युग का

सार्थकता का गाँव

राजा सिद्धार्थ का पितृत्व
नानी त्रिशला की ममता
पिन कुण्डलपुन वसियों
के सौभाग्य की क्या समता

कण-कण में धर्म
पल-पल में भुजव
'लोग हमें क्यों नहीं' लगाते
तालों को दुःख

कुण्डलपुन की
सुबह-दोपहन-शाम
हर्ष या
उल्लास के नाम



कृषि ने फल को जठम दिया
पुष्प ने सुगंध को
दूध ने मकनवन को
बादल ने जिन को
सागन ने रत्ननाशि को
भाषा ने कविता को
नात ने सुबह को
और कुण्डलपुन ने
महावीन को

तीर्थकन महावीन
अर्थात् ऐसा सूर्य जो कभी नहीं ढला
कुण्डलपुन बोला-
“मैं एक छोटा-सा गाँव सही
पर धनती का ऐसा कौन सा म्यान है
जो मेरी सार्थकता से नहीं जला !”

मां त्रिशला की जिज्ञासा

मुझे सब कुछ मिला सम्राट-
असीम मनेह
अमलत ननुशिर्यौं
वैभव विनाट

मैंने सब कुछ देखा महानाज-
सागन
पर्वत
नदियौं
समाज



सचमुच
एक से एक विक्रमय विमुग्धकानी
दृश्य भने हँ इस समान में,
पन बढ आनवों से
जो कुछ आज नात मैंने देखा
उसे देख कन पाया
देखने का सच्चा अर्थ,
उसके बिना
माना का माना देखना व्यर्थ

पहले ऐसा कमी नहीं हुआ था
ऐसा पहले कमी नहीं हुआ था
कि सोते सोते मेरा अतस् जगे,
मुझे सचमुच की दुनिया
प्रियया
और सपनों की दुनिया सच्ची लगे

वे निने स्वप्न नहीं थे महानाज !
तमी तो



गेम-नोम के अँनव बन जाने पर भी
 उहें देवने से जी नहीं बना,
 नीचे उतन आया आनळ का आकाश
 ऊपर उठ गई
 सवेदनाओं की लहलहाती वसुधना,
 सपने मुझ में
 और मैं सपनों में नवो गई
 क्या बताऊँ महानाज !
 जागी तो लगा-
 वही सपने देवने को
 एक बार फिर क्यों नहीं सो गई



पूछते हैं—
 उन में क्या था ऐसा ?
 कैसे कहूँ
 किस से तुलना करूँ
 इस दुनिया में
 कुछ भी तो नहीं है कैसा
 उतने श्वेत...उतने उजले
 कहाँ हैं हाथी और कृषभ
 उस कैसनी सिंह जैसा
 रूप किनी भी शेर को नहीं भूलभं
 कहाँ है वह लक्ष्मी
 जो मंगल गान गाते नहीं शकती

सम्पूर्ण सृष्टि के पुष्पों की सुधनता मिल जाये
 तो भी वैसी
 छे मालायें नहीं बना सकती
 वैसा चढ्ढा इस गगन में नहीं उठाता
 इसका नूनज भी
 उतना तेजस्वी नहीं लगाता
 मेंने देखा जो ध्वज



कोई भी पताका
 नहीं लगाती उसकी चरण-नज
 उस तनहू का
 कलश भी कहीं नहीं पाया जाता
 वैसा पद्म बनोवन
 इस धना पर जगह नहीं बनाता
 उस समुद्र जैसी
 नहीं है किन्नी भी महासागन की पहचान
 में अलावा
 और किमने देखा होगा
 वैसा विमान

वह नत्मनाशि तो
सृष्टि का सबसे चमकतऱन भाग थी,
धुँँ का लेश-मात्र नहीं था
पन आग थी

अपने-आप से भी ज्यादऱ अपने
ऐसे थे
वे चौदऱ सपने



वे निसे स्वप्न नहीं थे महानाज !
शीघ्रातिशीघ्र शाक्त कीजिये
ऐसी ज्ञान पिपासा
अब मैं त्रिशला नहीं
मैं तो हूँ—
केवल जिज्ञासा
केवल जिज्ञासा ।

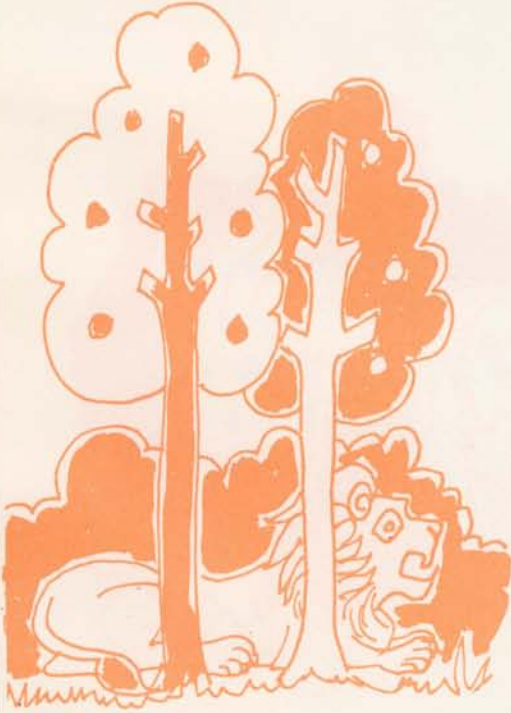
पिता सिद्धार्थ की सम्बेदना

भुनो महानानी !
आज दिनबान में
विद्वान नैमित्तिकों ने जो-जो बताया
उस पन
सहजता से नहीं होता विश्वास
देनवो !
मेंने एक-एक नोम से
छलकता उल्लास



हमाने भाग्य में
सम्पूर्ण सृष्टि को दुर्लभ नेनवा है
तुमने सपने नहीं
मातृत्व का पनम सौभाग्य देनवा है
तुम जितनी अनव्य हो
उस से भी अधिक धव्य हो त्रिशला
मेंने भुना तो झूम उठे
धनती-आसमें
लगा कि में नाजा कयो बना
कयो नहीं बना
तुम जैसी में !

तुम आजकल के अथाह
 धीनसागर में नवने वाली हो
 एक महानतम
 पुत्र की मों होने वाली हो
 में उसका पिता कहलाऊंगा
 और उसी के कानन
 युगों-युगों तक अमन हो जाऊंगा



स्यावत हाथी जैसा
 होगा वह उजला और भशक्त
 भक्षी जीव होंगे उसके भक्त,
 मोती उछों
 जगह-जगह सूनवी नेत में
 जब वह कृषभ के भ्रमण
 धर्म के बीज बोयेगा न्वेत-न्वेत में,
 केसरी सिंह जंगल पर राज कर्ता है
 वह
 अपनी इच्छाओं पर राज कर्नेगा
 काम
 उनके पास फटकने से डरेगा,



लक्ष्मी मिटाती है संतान
पुनः ऐश्वर्य होगा उसका वन,
वह दुनिया भन का ननेह
औन सम्मान पायेगा

मालाओं का एक-एक पुष्प
उसके प्रति
अगाध श्रद्धा से भन जायेगा,





चच्छमा की तनह वह
 भुनव-शाक्ति की शीतलता बनसायेगा,
 सूर्य बन कन
 अज्ञान और दुःखों का अंधकार मिटायेगा,
 समग्र लोक में उसकी

यशः पताका पहनायेगी,
 धर्म के महल में
 कलश की तनह शीर्ष-स्थान पायेगी,
 बहुत से कार्यनों के बीच
 वह ध्वन होगी





समान मनोवन भे पैछ होकन मी
नाग-द्वेष
के जल से दूरा होगा,
गुणों का नत्नाकन होकन मी
सामुंद्र भा गम्भीर

विमान के देवों से अर्चित
निर्मलता की तसवीर,
सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चानित्र जैसे
नत्नों का धानक,
ज्ञान की अग्नि से
कर्मों के धुँएँ का निवानक





सचमुच !
ये गिने नवज नहीं हूँ महानानी !
ये तो हूँ
सबके लिये अभयकन
तुम्हानी कोनव में
आया है कोई चक्रवर्ती सम्राट्
या तीर्थकन

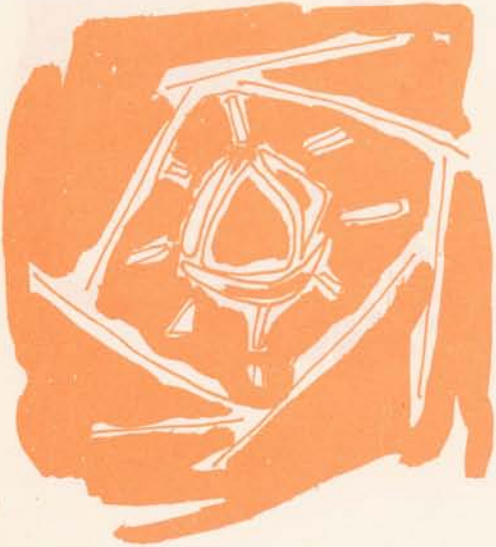
अब तो इसी पर
केवल नहेंगे हमने मन वचन काय,
तुम पुत्र को जन्म नहीं देगी
नचोणी
मनुष्यता का एक नया अध्याय !



गर्भस्थ प्रभु का संकल्प

बहुत मँओं को
मुनव-दुःख लिये हँ मँगे
बस !
अब और नहीं

नाग-द्वेष के चक्कर में
अब और नहीं ही होना है भ्रष्ट
पर यह मैं क्या देख नछा हूँ
मेरे हिलने-डुलने से
मेरी अनिक्की मँों को भी कष्ट !



नहीं-नहीं
अब मैं नहीं हिलूँगा
मँों के गर्भ में
चुपचाप निवळूँगा
लो
मँों बढे कर ही हलचल
पर यह क्या
मँों अब भी विकल !
ठीक है मँों
विकलता अब तुझे कुछ नहीं कहेगी
मेरी हलचल
जानी नहेगी .

भोगता हूँ
 कोमलता की पनाकाष्ठा
 होता है माता-पिता का हृदय
 उनका व्यक्तित्व
 भक्तान की लय में ही
 हो जाता है विलय
 भक्तान में ही
 बसते-हँसते हैं उनके प्राण
 भक्तान से ही जुड़े रहते हैं
 उनके साहस
 उनके भय



ओ मेरी अतिम मों
 ...ओ मेरे अतिम पिता
 इस भव इस देह में
 कभी तुम्हें दुःख नहीं हुआ
 जन्म लेने से पहले सकल्प लेता हूँ
 तुम खेनो को कभी दुःख नहीं हुआ
 तुम्हारे रहते
 वीक्षा भी नहीं लूँगा ।

जन्म : एक युग का

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को
इतिहास ने इतिहास नचाय
प्रभु अये

निबल उठा माटी का एक-एक कण
हना हो गया
सूत्रवेपन का तृण-तृण



अधेना छँट नहा था
वेमनस्य हट नहा था
हिंसा,
जहाँ मी थी,
सहज गई
नानकियों तक की वेवना
घम गई,
निर्धनों के हाथों में उजा आई
सौभाग्य-नेनवा,
बदियों ने मुक्ताकाश देनवा,
देवी-देवताओं ने महोत्सव मनाये
प्रभु अये

जैसे मूर्च्छित में चेतना आती है
जैसे गुणोपन की जुबान
गीत गाती है
जैसे नेत्रहीन को नेत्र मिलते हैं
जैसे कूनता के भीतन
अँसू निकलते हैं



जैसे अँहकान में आने लगे सनलता
जैसे पत्थन बिल लोभ
उठाने लगे
त्याग की तनलता
जैसे क्रोध की दुनिया में झमा मुस्कनाये
प्रभु आये

नक्तपात मिटाने वाले का जन्म भी
नक्त रहित था
अज्ञान के अंधकार में
मति श्रुत अवधि ज्ञान के प्रकाश सहित था



सितानों को अद्भुत अरुणिमा
देखने का लोभ था
वे गगन से जाना नहीं चाहते थे
देवता भी
भोगों का लाभ उठाना नहीं चाहते थे
पशु-पक्षी तक
जाग उठे थे उल्लास से
तीनों लोक भन गये थे
अहिंसा के प्रकाश से



बड़ों-बड़ों से बड़ा बचपन



शंकरा देव का आत्मकथन

इच्छ ने तो कहा था
में ही
ईर्ष्या और शंका के
कैंटा में उलझा था
मैंने उसे आठ वर्ष का
एक साधारण बालक मात्र समझा था



सोचा था-
वैभव में पले-बढ़े राजकुमार
तो मैं भी
और भी कोमल ही होते हूँ,
मानव का छोटा-सा
बच्चा होता क्या है
देव-शक्ति के आगे,
उसको भी क्या पनवें

परन्तु कहा था इच्छ ने
ही थी चुनौती देव-शक्ति को
चुप रहें अथवा देव
नपुंसकों की तरह,
मैंने नवीकान की चुनौती

मेंने
देनवा-

कुंडलपुत्र में नवेल नहे थे बालक
नाजकुमान वर्धमान के साथ,
मेंने अँनवे बरह कीं



अँन बन गया
विकनाल सर्प
पेड़ से जा लिपटा
फन फैलाया
आग उगलती नज़नो से देनवा
पेड़ तले नवेलते बच्चे
जान हथेली पन लेकन भागे

देनवा पेड़ के ऊपर
बैठे बच्चों की घिग्गी बंध गई
पके आमों की तनह टपक पड़े
एक के बाद एक

मेरे अहकान ने अट्टहान किया
देनवा वर्षमान को,
वह मुझे देनव नहा था
मुझे



मुझे
उसने पकड़
पेड़ से बल छुड़ये
एक हाथ से मुँह जकड़
दूसरे से पूर
मेसा वजन अपने शरीर पर ओटा
मेसा

ओन मुझे दून छोड़ आया
मुझे

मुझे लगा
कि वर्धमान नहीं है यह
यह तो वीन है
वीन

पन मन था कि मानता ही नहीं था



वीन से अभय पाये बालक
पुनः नवेलने लगे
तिठ्ठूषक
में मी
बालक बन जा मिला उन में
साने भागे
पन वीन सब से आगे
वह
पेड़ को सब से पहले छू आया
वह जीत गया तो
मेंने उसे कंधे पन बेठाय
ओन छोड़ पड़



ढँड़ते-ढँड़ते
अपने आकरन को कनता गया बड़
मीमकय देख्य हो गया अंततः
पन पिन मी नहीं उना वह

लम्बे मुकीले तीनवे
ढँत औन मानवून छिनवे
झाड़-झवाड़-से बाल
औनवे अंगानों-मी लाल



बालक भाग नवड़े छुए
पन कमाल
वीन ने किया
मेमे कंधे पन मुष्टि-प्रहान
मेमे नोम-नोम मे ढर्र की लहन
वातावनण मे
मेसा चीत्कान

छडिड्यौं हो नही थीं विकल
मेमे जाना-
वीन का अतुलित बल

अहंकान पोन-पोन टूटा
स्रमा मँग कन
किन्नी तनह छूटा

सचमुच !
मेरी ईर्ष्या और मेरी शंका
बेकान थे
वर्धमान की प्रशंसा सुनकर
जो खेव चुप रहे
वे नफुसक नहीं,
समझखन थे



मेरे मन में अब भी
उसके पौरुष की तन्वीन है,
तुमने
प्रशंसा कम की थी इच्छ
वह
वर्धमान या वीन नहीं

वह तो महावीन है
महा-वीन ।

ज्ञान को ज्ञान कौन दे

शाला के कुलपति ने स्वागत किया
नाजा निरुद्धर्थाँ औन
नाजकुमान वर्धमान का
वर्धमान का बौद्धिक नतन जानने के लिये
प्रश्न किये
वर्धमान ने
औनवे नवोल देणे वाले उत्तन दिये

औन पूछा
औन बताया



औन पूछा
औन बताया

कुलपति हैनान
कुछ समझ न पाया
जैसे-तैसे संभला

मुक्व भे सच निकला-
“यह तो साक्षात् ज्ञान है
कुछ भी बता सकता है
में इसे पढ़ाऊँ क्या
यह तो मुझे भी पढ़ा सकता हूँ”



भगवान कने-
यह युगों-युगों तक जिये
यह मेरे पास आया है
तो शायद
मुझे गुरु का मान देने के लिये”

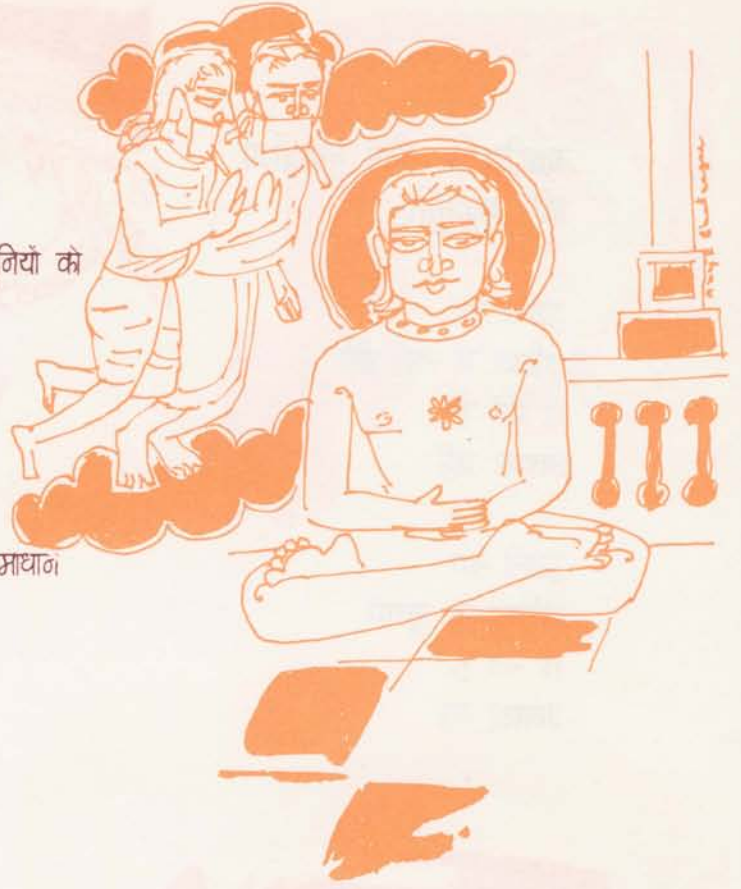
सचमुच !
ज्ञान के क्षेत्र में
कभी कोई कुछ नहीं खोता है
यही एक ऐसा मैदान है जिसमें
हानने का भी गर्व होता है ।



सठमति

गर्व हुआ था
उन जंघाचरण-लब्धि-सम्पन्न मुनियों को
जो महल की छत पर
वर्धमान को ध्यान करते देख
उतन अये थे

अगमों के गूढ़ प्रश्नों और
मन की जटिल शंकाओं का समाधान
पा कर हर्षयि थे



पूछने के लिये जब उनके पास
कुछ नहीं रहा था
तब उन्होंने ही
पहली बार वर्धमान को
'सठमति' कहा था ।

नव्दीवर्धन औन सुदृशना की अनुभूति

हमना दिन
वर्धमान के साथ बीते
तो दिन है
अव्यथा नहीं

हमनी नात
वर्धमान को मूलाये
तो नात है
अव्यथा नहीं



पहले भी था हमने पास
निवलौनों का भण्डान
पन म्रौं ने
पहले कभी नहीं दिया
एसे निवलौने का उपहान

वर्धमान अछान हमाने पास नहे
तो हम
किमी से कुछ नहीं लेंगे
अपने इस निवलौने को
साने के साने निवलौने दे ढेंगे
साने के साने पकवान
दे ढेंगे साने का साना दुख्यु



साने का साना जहान

हम कमी जिद नहीं कनेगे मों !
बस ! एक बात मान जाओ
वर्धमान को
हमाने पास से मत हटाओ
मत हटाओ ।

सुपाशर्व का अनुभव

'चाचा'

शब्द तो पहले भी सुनता आया
पन पहले क्यों नहीं थी
इसमें इतनी मिठास



आज क्यों
इसी एक शब्द में समा गया है-
मेसा भविष्य
मेसा वर्तमान
मेसा इतिहास ?

मदमस्त हाथी के भाव

औन किन्न में हे
मेसे जितना बल
पिन भी में पनतंत्र नहता हूँ
महावत के
अकुश नहता हूँ
नहीं सँझूँगा
अब औन पनतंत्र नहीं नँझूँगा



मुझे क्या बस में कन्नेगे
ये तिनको जैसे लोग
सब को हे कायनता का नेग
इनके लिये तो
भूड की एक पुंकाव ही कापी है

लो !
 मेंने पेंकं दिये लोग
 पेंकं दिये तिनके
 नोंह डाले बच्चे
 मिट्टी के लौहे कच्चे
 ढहा ही ढिवानें
 धनाशायी कम ही मीनानें
 तोड़ डाले भानी भनकम ढननखत
 लोग जानें कि मुझमें कितनी ताकत
 में
 कितना भनखत



पन कौन हूँ ये बालक जिमने
 मुझे टाका
 आगे बढ़ने से नोका
 मुझे
 अभी इसे मजा चनवाता हूँ
 पैंवो तले हम्मेशा के लिये भुलाता हूँ
 पन यह क्या
 यह तो
 उखल कम मेमे ऊपन चढ गया
 ढनवो !
 ढनवो-ढनवो !!
 इसका होंमला कितना बढ गया !!!

छाय ...!
 यह मृष्टि-प्रधान
 मेसा आ आ चीत्कन
 अरान हो गया ऐसा
 एक प्रधान ओन
 तो झ धनती पन कहँ पाऊगा ठोन ?



मान गया-
 मुझसे सम्पूर्ण मृष्टि का बल नहीं है
 मुझसे
 अधिक बलशाली तो यहीं है
 में क्या जाँऊँ
 बल का ओन-छेन
 लो !
 में चला चुपचाप गजशाला की ओन

देनवो !
 मेरी ओनवो में शक्ति का नीन है
 यह बालक वर्धमान नहीं
 यह तो अतिवीन है
 अति-वीन !



सभी को जीने का अधिकार

वर्धमान ने एक करम बढ़ाया
एक निर्धन को समृद्धि मिली
दूसरा करम बढ़ाया
एक वनत्रहीन को वनत्र मिले
तीसरा बढ़ाया
भूख ने व्यजन पाये
चौथा बढ़ाया
नेड़ी तक पहुँचा स्वान्धय
पाँचवाँ बढ़ाया
अनाथ ने आसना पाया



सबने चाह-युगो-युगो तक
बढ़ते ही जाये
वर्धमान
वन-विहान करते वर्धमान
नवड़े हो गये एक पेड़ तले
निहानने लगे प्रकृति की देन
कि अकनमात्
पीड़ से चिंचियाता
पेड़ से आ पड़
एक पंखी लहूलुहान

वर्धमान का
 नोम-नोम कनाह उठा
 पोन-पोन हो गया
 अपने नक्त से नजित
 अँनवों में उमड़ आयी अहिंसा की नदी



बुलवाया शिकानी को
 पकड़ लाये भेवक तत्काल
 'चण्ड' नाम का गुलेलघानी बालक
 सहम गया—

बोले वर्धमान—
 “जैसे हर्द हो तो तुम्हानी सहनशीलता
 होती है
 वैसे ही चोट लगे तो पीड़
 सब को एक जैसी होती है

कमी भी
कोई डमना नहीं चाहता
तुम्हारी ही तमह कोई भी जीव
कमी
ममना नहीं चाहता
आज तुमने
निनपनाथ पंखी को घायल कन दिया
कहो कहो
अब क्या कनोगे तुम ?”



चण्ड ने कहा पंनन—
“तोड़ डूंगा, नाजकुमान
गुल्ले तोड़ डूंगा
औन शिकान
हमेशा के लिए छोड़ डूंगा”।

नाग दीनवता हुआ विनाग

'वर्धमान बड़ा हो गया'
मैं ने सोचा
'वर्धमान विवाह-योग्य हो गया'
पिता ने कहा-
'महासाम्बत सम्भवीन की पुत्री यशोदा का
प्रस्ताव स्वीकार हो'
भाई ने उत्साह-सागन को धाम
पनामर्श दिया
सोचा-
भोग के मल में भी
कमल निवल सकता है योग का
यह भी दिन्वा दिया जाय
कर्मान्वत दुनिया को



वर्धमान ने जाना
पहचाना सत्य सभी का
याद किया-
गर्भ में लिया संकल्प
... 'कमी नहीं देखी दुःख
यह देह उन्हें
जिन्होंने जन्म दिया'
विवाह किया
अक्षय ज्ञान-कोश दिया यशोदा को
पुत्री प्रियदर्शना के साथ नहे
संनकान धर्म के

धर्म चाहे गृहस्थ में हो
या सत्यास में
धर्म तो
धर्म का ही प्रमान कनता है
नाग में भी
विनाग भनता है

पनिश्चितियाँ जो भी थीं
महावीर ने
स्वयं नचा अपना समय

कामनाओं के छोड़े
कभी नहीं
कभी नहीं हो सके अभय
कर्म-शत्रु कह गये—
'महावीर के जीवन में
हम तो
अपने लिए न्यान
ढूँढते रहे
ढूँढते रहे
ढूँढते ही नह गये'।



ज्ञान है तो शोक नहीं

भोचा वर्धमान ने—
'यह देह प्रखन करने वाले
तज गये अपनी देह

प्रत्येक देह का अवसान
निश्चित हो जाता है
जन्म के समय ही
अपनी यात्रा के इस पड़ाव पर
माता-पिता
अट्ठाईस वर्ष रहे मेने साथ
इस अवसन पर
एक भावना है मेनी भी—
उनकी यात्रा को
पूर्णता मिले शीघ्र ही
मेने गर्भ में लिया संकल्प निभाया
संकल्प
एक और भी है—
इतने अच्छे थे माता-पिता
कि वही मेने
अद्विज माता-पिता हों

फिन किसी के
 सपनों में न पल्लू में
 सदा-सदा
 त्रिशला और सिद्धार्थ की ही सलतान कहाऊँ



इसके लिये
 कननी है साधना मुझे
 पनवतु ज्येष्ठ भ्राता ने कहा है—
 'ओंनू भूनवने दो
 घन में नहो अभी दो बनस और'
 उन्होंने दिया है वचन—
 दो बनस बाढ़ वे नहीं नोकेंगे

ठीक है
 ज्येष्ठ भ्राता के नाम
 दो बनस और
 यों भी
 ज्येष्ठ भ्राता तो पिता-तुल्य होता है ।'

परिवर्तन को तड़पता समाज



यह कैसा समाज है
 एक और भोजन के भण्डान हैं
 दूसरी और भूनव और अनन्त प्रतीक्षा
 एक और भूने महल हैं
 दूसरी और छँव को तनसते सन
 एक और पहने जाने की बाट देवते कपड़े हैं
 दूसरी और ठिठुनते सिकुड़ते बदन
 एक और हाथी-घोड़े हैं
 दूसरी और गंगे पाँव
 एक और नवामित्व है
 दूसरी और दासता
 कैसा समाज है यह
 यह कैसा समाज है
 जो मनुष्यता के बिना ही
 मनुष्य-समाज कहलाता है
 जहाँ इत्सानों को
 वस्तुओं के समाज नवनीदा-बेचा जाता है
 दासों से निर्ममतापूर्वक

काम कनाने का रहता है जुबून
काम न होने पर
कोड़ों से ऐसे पीटते हैं उन्हें
कि देह पर जगह-जगह
छलछला आता है नबून

जातिवाद का है ऐसा भयानक रोग
कि शूद्रों को
मनुष्यों के पांव की जूतियां
समझते हैं लोग
उन्हें धर्म-स्थानों में नहीं जाने देते
उन की
छोंव तक पास नहीं आने देते

निम्नियों को भी
बनाया जाता है दानियों
अपनी इच्छा से वे
न हँस सकती हैं
न ले सकती हैं उबारियाँ



उन्हें
समझा जाता है मनोरंजन का सामान
फिर वे
कुओं में कूद कर क्यों न दें जान
उनके लिये
द्विवास्त्वप्न है
सम्मान की जगह
कैसा समाज है यह

यह कैसा समाज है
जहाँ व्याय के नाम पर अत्याय
सद्यचान के नाम पर कद्यचान
और
धर्म के नाम पर अधर्म होता है
हनु यज्ञ में
कम से कम एक स्वस्थ पशु
अपनी जान अवश्य नवोता है
उनके मोंस को
कहा जाता है प्रसाद
इस अधर्म का
कोई नहीं करता प्रतिवाद

नैतिकता उठ गई
 सख्तब्रह्म छूट गये हैं
 लोग
 न अपने से जुड़ते हैं
 न दूसरे से
 वे तो संकीर्णताओं में उलझ कर
 टूट गये हैं

इस अंधकार में
 क्यों...अनिबन्ध क्यों
 प्रवेश नहीं करती भुबह
 कैसा
 कैसा समाज है यह



यह समाज
 भ्रत्य जानने के लिये
 कुछ नहीं सीख रहा है
 यह तो बस
 रह-रह कर चीख रहा है—
 सम्भ्रालो...और सम्भ्रालो
 अगन कुछ कर सकते हो तो
 मुझे बहलो
 मुझे बहलो
 मुझे बहलो ।

करुणा-वीन

'समाज बदलने के लिये
पहले स्वयं को बदलना है
बड़े भाई के कहे दो बनस
बीत गये
अब मुझे
अपनी सोची हुई नाह पन चलना है
मैंने स्व-पन-कल्याण की
शापथ ली है
फिर लोकात्मिक देवों ने भी
धर्म-तीर्थ-प्रवर्तन हेतु प्रार्थना की है



मैं जिन्-दीक्षा अंगीकान करूंगा
पन अनजाने में भी सम्पदा से
अघाये हुए भुनियों का पेट नहीं भरूंगा
बेबसों के लिये
कुछ न कुछ अवश्य सोचूंगा
गनीबी के आँसू
जितने पोंछ सकूँगा
पोंछूंगा

बहुत संभव है-मेने प्रयास
विनाट निर्धनता का अभिशाप
न मिटा पायें
पनन्तु एक वर्ष तक
मैं नित्य बाँटूंगा
एक कनोड़ आठ लानव स्वर्ण-मुद्रयें ।'

सोचा महावीन ने,
उन का यह विचान
वर्ष-भन उनकी
सौंस-सौंस में जिया

उस करुणा-वीन ने
जो सोचा था
वही किया
वही किया ।

सार्थकता की पनम यात्रा

महावीन का
महाभिमिषिक्रमण
देवों-मनुष्यों पशु-पक्षियों का
महोत्सव

धनती ने नहीं देखा था
ऐसा जनसमुद्र
अपान
आसमान में भन गया था

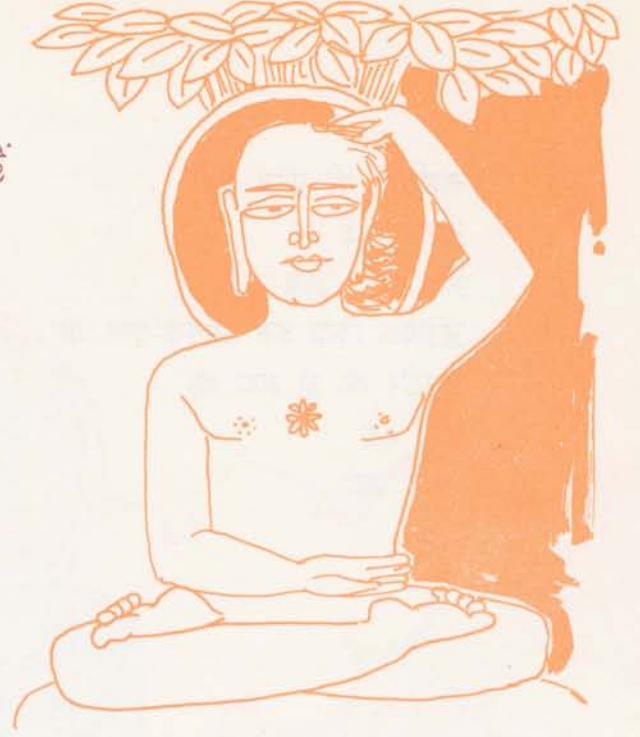


महावीन का जय-जयकान

भाई नठ्ठीवर्धन,
बहिन सुदर्शना
औन चाचा भूपार्श्व
हैनान शे
देनकन वर्धमान का
इतना बड़ा पनवान

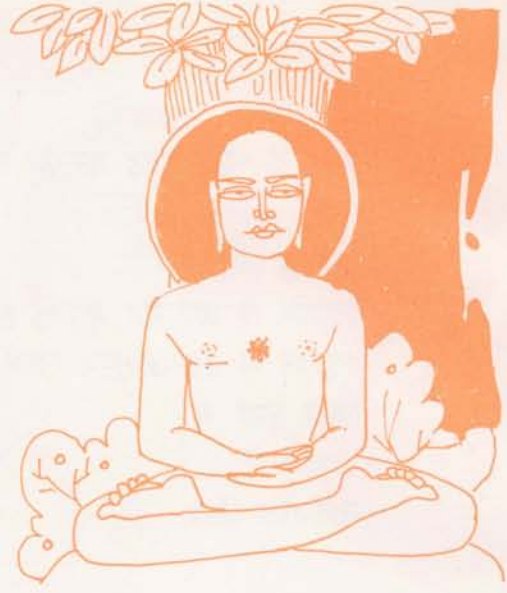
इतनों को वर्धमान प्याना है
सभी कह रहे हैं—
'वह हमाना है
हमाना है'

सभी के हृदय उमड़ कर आ रहे हैं
सभी
अवरुद्ध कंठ से
महावीर के जय-गीत गा रहे हैं
महावीर ने वस्त्र-आभूषण त्यागे
अपने हाथों से
अपना
केश-लौंच किया



संकल्प लिया
सभी पाप त्यागने का
तीन करण-तीन योग से

भार्थकता की पनम यात्रा
आनम्भ हई
मनः पर्यय ज्ञान ने
अभिषेक किया इस आलोक-यात्रा का
महावीन का हो गया वह
जाग उठे
उसके भाग



गूज उठी दिशायें—
धव्य हँ महावीन

धव्य है महावीन का त्याग ।





साधनाः केवलसाधना

प्रकाश-पर्व : महावीर / 63

छड़ नहा या झुमेक

छोड़ कन
शनीन के मुनव
छोड़ कन
शनीन के सामन्त सम्बन्ध
महावीन छड़े
आत्मा के आनन्द की ओन



पनीषहों, उपभर्गों को आर्द्रित कनता
साहस छड़ नहा हो जैसे
त्याग ने देह धानी हो
संयम छड़ नहा हो जैसे
मुनित्व छड़ नहा हो जैसे
हवा छड़ नहीं हो मुक्ति-गगन में
छड़ नहा हो जैसे
भिक्षुत्व का सूर्य
पनम स्वतन्त्रता का आलोक लुटाता

अभिनन्दन स्वरूप
इच्छ ने जो डाला था वह
देवदूष्य प्रसन्न था
अपने सौभाग्य पन
हवायें
उड़ा नहीं पा नहीं थीं उसे
जकड़े था ऐसे वह
प्रभु के कथे को

जंगल की धानणा टूट गई थी
कि केवल वैशाली के हैं महावीन
भिहन-भिहन जा नहे थे

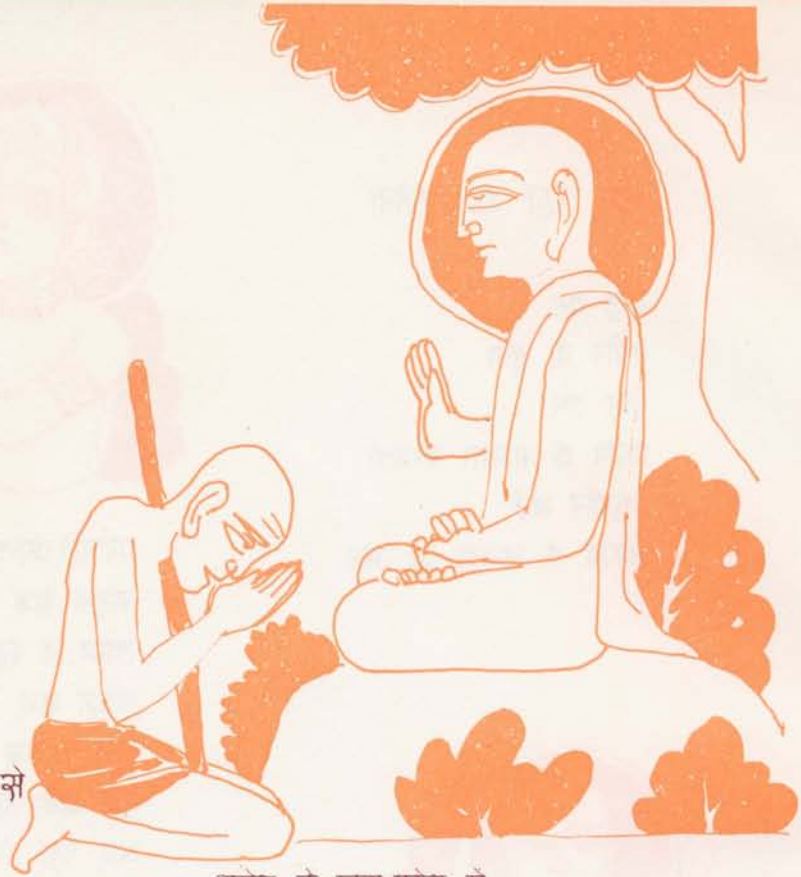
उसके वनस्पति-नोम
देनव-देनव कन प्रभु को
अपनी ओन आते

माने खुशी के
लहना नहा था जंगल
आज उसने पहली बान
चलते देनवा था
श्रमणत्व के भुमेक को

छट नहा था भुमेक
साधना-पथ पन ।

द्विद्विता मिली अपनिग्रह से

साधना-पथ पन
छटते चरणों में
साष्टांग प्रणत एक दिन-जर्जन वृद्ध



भुमेक के हृदय-प्रदेश में
करुणा
हनीतिमा बन लहाने लगी

पुनः देनवा करुणा ने—
कपड़ों और देह के बीच
जीर्ण-शीर्ण होने की छोड़
पोन-पोन पन
असनव्य झुर्नियों में लिनवे
गनीबी के मर्मातक अनुभव
तमाम उम्र
दुःखों की चट्टानें तोड़-तोड़ कन
औंनों को जैसे-तैसे मिली
कुछ नमी
जिठ्ठणी-भन का दुःख
हाथ जोड़ कन बोला—“प्रभु !
आपको क्या कमी



में वैशाली से दून भिक्षाटन को गया
 लौटा तो जाना—आपका वर्षादान
 मुझे अभागे के हाथ से नवा गया
 आपकी कृपा का मेघ
 साल-भर कल्प-वृक्ष बन कर बनसा
 और बह गया
 में तनसा
 नवूब तनसा
 इस बार भी तनसता ही नह गया
 पता लगते ही जागा
 आपके पीछे-पीछे भागा
 हे प्रभु !
 अब तो मेरी पीड़ा हन लीजिये
 मुझे भी
 कुछ तो दीजिये”



महावीर ने देखा—
 वृद्ध की नजन
 गड़ी है देवदूष्य पर
 उसे देवकन
 अभावों के झाड़-झनवाड़ में
 निबल उठे हैं
 भावों के अनेक भ्रमन
 यह वस्त्र इन भ्रमनों में
 उलझ गया है
 इसे लेकर आगे बढ़ा तो
 भ्रमनों को चोट लगेगी
 हिंसा व्यर्थ जगेगी



दनिद्रता आतुन थी
 बाली—
 “आपके पास अभी शेष है
 यह कपड़ा
 इसी में से
 दे दीजिये आधा टुकड़ा
 यही होगा मेरा प्रसाद
 आपकी उदानता की याद”

प्रभु ने विलम्ब नहीं किया
तत्काल आधा देवदूष्य फाड़ा
और दनिद्धता को दे दिया

दनिद्धता ने नगर में पहुँचकर
उसका मोल समझा
मन
शेष आधे टुकड़े में जा उलझा
पीछे-पीछे वृद्ध भी गया
जंगल में कनते हुए शोध
देखा-ध्यानलीन महावीर को



नहीं था देह का बोध
नहीं नही गुंजाईश गिड़गिड़ाने की
हिम्मत नहीं हुई
देवदूष्य चुपचाप चुनाने की
देन-देन खढ़ती गई चाह
वह महावीर के पीछे-पीछे फिना
पूने तेनह माह
तब एक दिन
उसका भाग्य फिन गया
देवदूष्य उसके प्रति करुणा से भना
और अपने-आप गिन गया
उसने लपका और चल दिया वह
मन ही मन उसका मूल्य आँकते

महावीर को
क्या पड़ी थी
कि उस ओर ज़ना भी
झँकते !



‘स्व’ के योग में
‘पन’ का सहयोग कैसा

महावीन भठमति थे
अतिवीन थे
वर्धमान थे
पनवतु कर्मन ग्राम की सीमा पन
जब ध्यानलीन हुए
तो ध्यान थे
केवल ध्यान

आत्मा के ध्यान को
सुबह-दोपहन-शाम का कैसा बोध
न किसी से लगाव
न विनोध



ध्यान था अकेला
गोधूलि की वेला
एक किसान अपने बैलों को लेकर
लौट रहा था
आत्मा के ध्यान को देख
उसने कहा था—
“मिष्टु ! सुनो मेना कहना
में घन से लौट कर अभी आया
तब तक मेने बैलों को देखते नहना”

आत्मा के ध्यान को
भौतिकता क्यों कर नहती याद
किसान लौटा मुहूर्त-भन बाद
देख कर हुआ पनेशान
बैलों का न कहीं नाम न निशान
पूछ महावीन से—
“बैलों को ले गया कौन ?”
महावीन मौन !

उसने नात-भन बैलों को नवोजा
ज्यों-ज्यों बैल नहीं मिले
त्यों-त्यों लहता गया मन पन मनो बोझा
धक-हान कर सुबह कर्मन लौटा

तो उसके प्रयास
 बैलों को और खोजने से इन रहे थे
 वह देवकन हैना नह गया—
 महावीर ध्यानमग्न थे
 और उसके बेल वहीं चन रहे थे !



इस संयोग ने
 उसके मन में कूनता के विचार जगा दिये
 'छो न हो
 चुनने के लिये
 मेने बेल इस मिष्णु ने ही
 रात को छिपा दिये'



कूनता की नन्ही से
 अज्ञान ने तत्काल कोड़ा बनाया
 तड़ातड़-तड़ातड़
 ध्यानलीन देह पन बननाया
 जहाँ-तहाँ पड़ी
 भूर्भुव नेनवाओं से लहू उखल आया
 पन मज्जाल
 कि तिल-भन काँपी हो वह काया

यह उपसर्ग आसानी से नहीं टला
 नवर्गनिध देवेन्द्र को पता चला,
 देव होने का
 लाभ यही तो है
 कि जब-जब भएजगता पन
 अत्याचान होते हैं तो
 पता लग जाता है समय नहते
 अव्यथा महावीर
 और जाने कितने अत्याचान सहते

देवेन्द्र ने
 किम्मान को सच्चाई बताई
 तो उसके मन में
 कठोरतम दण्ड की आशंका उमड़ आई
 तब महावीर का ध्यान-क्रम टूटा
 उनके दिले अभय से
 किम्मान का तनाव छूटा



देवेन्द्र बोले—“प्रभु !
 आपका ध्यान अबाध हो
 इसलिए
 मैं आपकी सेवा में नहना चाहता हूँ
 मेरे मन की नीप में
 इसी आकांक्षा का मोती है

महावीर बोले—
 “‘स्व’ के योग में कोई सहयोग
 नहीं होगा
 आत्मा की साधना तो
 अकेले ही होती है।”

साधना के संदेश

पूने साधना-काल के दौरान
महावीर
ध्यानमग्न नहे

या गतिमान
तीसरी कोई स्थिति नहीं थी इसके अलावा
वे समझते थे
क्या है वास्तविकता
क्या है छलावा
वे केवल अपने ध्येय को जीते नहे
दैनिक-दैनिक-भौतिक कष्टों से
कर्म-निर्जना कर
अमृत पीते नहे

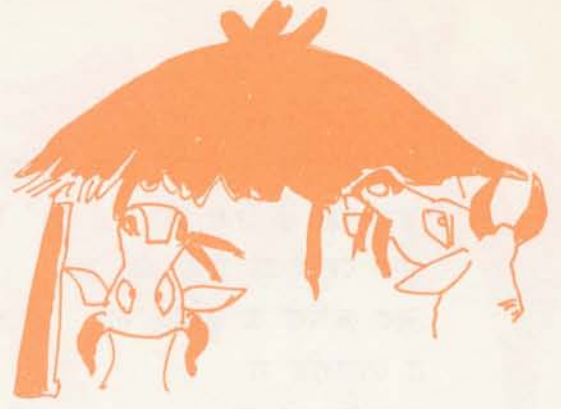
उनका ज्ञान और उन्नत
और उन्नत



और उन्नत होता चला गया
भौतिकता की गंध को
उनका शरीर नबोता चला गया
जीवन
बन गया
साधना का निरंतर गतिशील छव
देह के सहस्र-सहस्र नोमकूपों से
प्रवाहित होने लगी—
विमल होते भावों की दिव्य सुगन्ध

वे जहाँ-जहाँ जाते
अनजाने ही यह दिव्य सुगन्ध
चन-अचन को बाँटते
सुगन्ध का निमग्न पा
भँवने उनकी देह पर झपटते
और अंग-प्रत्यंग पर तनह-तनह से काटते
देह को होती है
तो होती नहे पीन
वास्तव में विदेह थे महावीर
कामिनियाँ आकर्षित हो उनके पास आतीं
भँवनों की तनह
मिनाश लौट जातीं

काम के विजेता
 सभभाव के प्रणेता
 साधना के सख्देश
 यात्रा करते-करते पहुँचे मोनाक सखिनवेश
 वहाँ राजा सिद्धार्थ के मित्र
 ऋषि-आश्रम के कुलपति
 दुइजंत ऋषि ने
 उन्हें तत्काल पहचान लिया
 हर्षित मन से स्वागत किया
 आश्रम में ठहनाया
 सुबह वे जाने लगे
 तो आग्रहपूर्वक उन से
 आगामी वर्षवास वहीं बिताने का वचन पाया
 महावीर पुनः आये
 अपना वचन साकान करने
 वर्षवास हेतु आश्रम में ठहनने
 तिनकों से बनी कुटिया में ठहने



ध्यान में उतन गये गहने
 अव्य ऋषि देनव कन हैनान
 कभी न दूटने वाला
 यह कैसा ध्यान !

उन दिनों वहाँ बानिश कम हुई थी
 वनस्पतियों भूनव गई थीं
 आश्रम के आस-पास का क्षेत्र
 विशेष रूप से शा भूनवे का माना
 न मनुष्यों को पर्याप्त अन्न-जल
 न पशुओं को चाना

पशु भूनव से छटपटाने लगे
 भूनवे पत्ते तो क्या
 लकड़ी के टुकड़े तक चबाने लगे
 जब-जब वे आश्रम में

कुटियों का घास-पूस नवाते
 तो सभी ऋषि लाठियों लेकर उन्हें नवदेइते
 दून भगाते



एक महावीर थे
जिनहोंने हिंसा से पूर्णतः किया किनासा,
आत्म-रक्षा के लिये भी
भूखे पशुओं को कभी नहीं मरना
अव्य ऋषियों के दुर्वचन सहे
वे ध्यानलीन थे
ध्यानलीन ही रहे



पर ऋषि-समूह चुप नहीं रहा
उनकी निरन्तर शिकायतें पा
एक दिन कुलपति ने कहा—
“क्षत्रिय-पुत्र होकर भी तुम
गायों को नहीं भगाते

एक पंखी भी अपना घोंसला बचाता है
तुम क्यों नहीं बचाते ?
ऋषि कहते हैं—
जो बचा न सके अपनी कुटीर
वह कैसा महावीर !”

सोचा महावीर ने—
कुटिया की ही चिन्ता कननी थी
तो ध्यान को आत्मा से क्यों जोड़ता
नाजभवन किस लिये छोड़ता
साधना हेतु नद्यान का चुनाव भी छल है
इस आश्रम से अच्छा तो जंगल है

वे आश्रम छोड़
बिना कुछ कहे बढ गये आगे
इस प्रसंग से
और अधिक



औन भी अधिक जागे

साधना-पथ में न आये बाधायें
इस उद्देश्य से ध्यान की
पाँच प्रतिज्ञायें—
'निंदा-भुति करने वालों के संग-साथ से
दूर रहना
भुनक्षित भयान न चुनकर
स्वयं को
पूर्णतः प्रकृति को सौंप देना
औन ध्यान की नखी में बहना
भिक्षा मांगने



व मार्ग पूछने के अतिनिकत
सर्वथा मौन रहना

औन

केवल कन-पात्र में भोजन करना
अपनी आवश्यकता-पूर्ति हेतु
कभी किसी को प्रसन्न करने का
नहीं करना प्रयत्न

पढ्कह दिन आश्रम में

औन शेष समय

एक वृक्ष के नीचे

...यू व्यतीत हुआ

श्रमण महावीर का प्रथम वर्षावास ।



इधन क्षमा थी उधन क्रोध

साधना करने छुए अविनाम
महावीन पहुँचे-अनिध ग्राम
ग्राम के निकट
यक्ष-मठिन को साधना-स्थल बनाया
तभी उस का पुजानी आया
बतलाया—

“यह एक दुष्ट यक्ष का निवास है
उसे मानव-नक्त की प्यास है
वह इस गाँव को
सचमुच अनिधियों से भन चुका है
कइयों की हत्या कर चुका है
आप अपने प्राण व्यर्थ न गँवाएँ
साधना के लिये
अव्यत्र कहीं जायें



महावीन ने सब कुछ सुना
परन्तु साधना हेतु
यक्ष-मठिन ही चुना

सचमुच !
देह-विभर्जन
मनुष्य को पौरुष से भन देता है
पूनी तनह
यक्षायतन से
देह-विभर्जित महावीन के
पनाक्रम को
ध्यानलीनता ने छुआ
भूर्यास्त हुआ
पहन रात बीते यक्ष आया
महावीन को देन भयानक अट्टहास गुजाया
यक्षायतन की काँप उठी एक-एक छिवान
उसने भनी
पशु-पक्षियों तक को रहला देने वाली
हुकान
जिस से काल पर भी कहन छाया
पर उसका आतक

कालजयी महावीर को हिला नहीं पाया
 यज्ञ का क्रोध
 और भी जगा
 वह नुकीले नानवुनों और ढोंतों से
 महावीर को काटने-गोंचने लगा

महावीर अचल
 क्रोध का और बड़ा बल
 उसने हाथी बनकर
 उन्हें झुंड में लपेटा
 पाँवों तले कुचला
 इस से भी काम नहीं चला

उसने सिंह का रूप लिया
 तीन्वे ढोंतों व नानवुनों से
 अंग-प्रत्यंग घायल किया
 सर्प-बिच्छू बन कर
 माने असन्वय विषैले डंक



महावीर अडोल
 निश्चक

उसका हन वान बेकान गया
 क्षमा मूर्तिमान हुई
 तो उसके सामने क्रोध हान गया
 तब महावीर ने हाँठ नवोले
 ककणा-सिक्त नवन में बोले—

“भव्यमन !

सत्य को जानो
 अपने-आप को पहचानो
 वैन से नहीं धुलते वैन के ढाग
 आग से
 और भड़कती है आग
 मैत्री के जल से वैन की आग बुझाओ
 दूसरों को अभय दो

दूसरों से अभय पाओ !”
 यक्ष ने कहा—“भिक्षुक !
 तुम्हें नहीं
 मुझे है प्रतिशोध का नोग
 क्षमा और अभय के योग्य नहीं
 इस गाँव के लोग



जब मैं बैल था पिछले जन्म में
 तब इन लोगों ने कोई
 कसन नहीं छोड़ी थी सितम में
 मैं उसी के
 गिन-गिन कन बदले ले रहा हूँ
 इनके पापों के फल
 इन्हीं को दे रहा हूँ
 समझ सको तो समझो
 मेरी व्यथा
 भुगो मेरी अपान वेदना की कथा—



मेना स्वामी धनदेव
 मुझे बड़ा प्यार करता था
 मैं भी उसी पन जीता था
 उसी पन मनता था
 उसने मुझे गाड़ी में कभी नहीं जोता था
 मुझे प्यार किये बिना
 उसे भोजन हजम नहीं होता था

एक बार
 वह पाँच सौ गाड़ियों में
 सामान भन व्यापार के लिये चला
 मैं भी गले की घंटियां बजाता
 साथ-साथ निकला

गनमी इतनी
 कि एक-एक जीव पसीने में बन गया था

वर्धमान ग्राम के पास
 बहती नदी का पानी
 भूनवकन कीचड़ बन गया था
 उसी कीचड़ में गाड़ियाँ फँस गईं
 ऐसी तो ऐसी
 कि किसी भी तनह निकल नहीं पाई
 स्वामी की छूट पड़ी रुलाई



अततः उस विपत्ति में
 उसने मुझे मित्र बनाया था
 तब उसके प्यान का कर्ण
 उतानने का दिन आया था

मैंने अपना साना बल
 अपने कंधों में संचित कर लिया
 पूना जोन लगाया
 और पहली गाड़ी को पान कर दिया
 फिर दूसरी
 फिर तीसरी
 यूँ सब गाड़ियाँ निकाल दी
 स्वामी की बिगड़ती तबीयत
 संभाल दी



परिश्रम इतना लगा
 कि परिश्रम के छक्के छूट गये
 गाड़ियाँ तो निकल गईं
 पर मेरे कंधे टूट गये
 स्वामी के होठों पर देवी मुस्कान
 जान में आई जान
 टूटे कंधों में दर्द था बड़ा
 मैं निढाल हुआ
 और धनती पर गिन पड़ा

यह देन स्वामी को अपान दुःख हुआ
 उसने मुझे
 जगह-जगह से छुआ
 में उठ नहीं सकता था
 झुक नहीं सकता था
 में चल नहीं सकता था
 और वह रुक नहीं सकता था



उसने ग्रामवासियों को इकट्ठा किया
 प्रभूत धन दिया
 कहा—'यह जो धनती पन लेटा है
 बैल नहीं है यह
 मेना बेटा है
 इसकी कनते नहना सान-संभाल
 हन तनह से
 ननवते नहना नरयाल

ये धन इतना है
 कि इसका महीनों तक नहीं होगा क्षय
 में अपने वत्स को
 साथ ले जाऊंगा लौटते समय
 इसके बिना मेना जीवन
 बना नहेगा भत्रास
 लो !
 मेना बेटा
 मेनी अमानत है तुमहाने पास'



गाँव वालों ने
 धन तो ले लिया
 पन मुझे
 एक बूँद पानी तक नहीं दिया
 भूनव-प्यास से तड़पता
 में पड़ा नहा धूप में
 अततः मन गया

औन जठमा यज्ञ के रूप में

अब तो मैं
केवल प्रतिशोध का अर्थ हूँ
उस समय ये थे
आज मैं समर्थ हूँ
एक-एक तड़प का
मैंने भनपून बदला लिया
वर्धमान ग्राम को
अनिद्याग्राम बना दिया
मैं यहाँ के बच्चे-बच्चे में
अपान यातनाओं का विष भरूंगा
नहीं भिक्षुक !
इन नाकसी लोगों को
कभी क्षमा नहीं करूंगा ।”



महावीर ने क्रोध की बात सुनी
मुस्कनाये
सहजता के शब्द
क्षमा की जिह्वा पन आये—
“यदि एक प्रश्न का उत्तर दे सको
तो अवश्य लेना बदला
नवून बना कपड़ा नवून से धोया जाय
तो कब तक हो सकता है उजला ?”

इसका उत्तर दे सकता है कौन
यज्ञ भी मौन

महावीर ने दिया बोध—
“विनोद से
कभी शांत नहीं होता विनोद
तुम प्रतिशोध की अग्नि पर
मेत्री, करुणा, प्रेम
व सहानुभूति का नीर बननाओ



अमृत बाँटो
अमृत पाओ

इस तरह इस जन्म में भी
तुम कुछ सार्थक कर जाओगे
नाम-नाम
आनन्द से भन जाओगे”

इतना सुनकर
यज्ञ नहीं रह सका नवड़ा
तत्काल महावीर के चरणों में गिर पड़ा
उसने अपनी मिथ्या धारणा को
नवो दिया
इस प्रकार
हामा के अमृत ने
क्रोध का मेल धो दिया ।



नस-नस में करुणामृत बहता

देह ने
आत्मा को प्रभावित किया
आत्मा को
देह ने
सुनव-दुःख की अनुभूति नगो गई
महावीर की देह
साधना से कुच्छेद हो गई

उत्तम वाचाला वन की ओर
बढ़ते महावीर ने निहाना-
गवाल-बालकों ने पीछे से पुकाना
“उधन मत जाओ भिक्षुक !



इधन आओ
उधन तो चण्डकौशिक भौंप का कहन है
उसकी पुँफकान में
उड़ते पछियों को भी नवींच कन
मान देने वाला जहून है
वह एक नजन देनव लेता है
जिस किसी को
तत्काल प्राण गँवाने पड़ते हैं उसी को
उसके क्रोध से कोई नहीं बचा आज तक
आप अपने को बचाइये
उस तनफ मत जाइये ।”

विदेह महावीर के पास
कहाँ से आता भय
यह सुन कन तो और दृढ़ हो गया
उसी नास्त से जाने का निश्चय
जिसका इतना भयानक नवींचा गया चित्र
उसी भर्ष को कहा महावीर ने
मित्र



गवाल-बाल ढेनवते नह गये—
योगी के नोम-नोम में अभय नहता है
वनना भयानक साँप को भी
कभी कोई अपना मित्र कहता है !

महावीन के साथ बढ़ा
उनका चिन्तन...
'करुणा का अधिकानी जीव-मात्र है
जिसे क्रोध ने पहले ही डँस नक्नवा है
वह सर्प
भय और क्रोध का नहीं
सहानुभूति और मैत्री का पात्र है
उसके पास जाना है
क्रोध के विष से उसे बचाना है'



देनवो !
अपने युग में महावीन
करुणा के कैसे-कैसे कालजयी बीज बो गये
वे सर्प की बाग्बी के पास पहुँचे
और कायोत्सर्ग कन ध्यानस्थ हो गये

चण्डकौशिक को
अनसे बाद मानव-देह का गठ्याभास मिला
आहान की सम्भावना से उसका क्रोध निवला

वह बाँबी से बाहन आया
एक आदमी को
अभय मुद्रा में नवड़े पाया
चुनौती मिली अहंकान को
क्रोध चढ़ा
छोड़ दिया हत्यानी फूत्कान को

पनव्तु महावीर जैसे थे
फूत्कान सहकन भी वैसे के वैसे थे
सर्प में



अहंकान और क्रोध का हो गया संयोग
फिर उसने अचूक
दृष्टि-विष का किया प्रयोग
चण्डकौशिक हैनान
मूर्च्छित होना तो दून
महावीर जना भी नहीं हुए पनेशान

अब क्रोध व मूढ की विष धाना
 पागल हो कर बही
 आवेश की कोई सीमा नहीं रही
 चण्डकौशिक ने
 महावीर के पैरों में
 अपने विषैले दौंतों का समूह
 एक साथ गड़ाया
 पनम आश्चर्य—
 पैरों से नवून की जगह
 दूध निकल आया



साधना ने जीवन में
 कैसा परिवर्तन किया
 क्रोध को क्षमा
 मान को विनम्रता
 माया को मनलता
 लोभ को त्याग
 हिंसा को अहिंसा
 कायनता को पनाक्रम
 निर्ममता को करुणा
 और नवून को दूध बना दिया

सच है—
 देह आत्मा को प्रभावित करती है
 आत्मा
 देह को
 समभाव बनी महावीर की देह



इतना सहती थी
कि उसकी नस-नस में रक्त की गहीं
करुणा की धारायें बहती थी

एक ओर रक्त-पिपासु विष था
दूसरी ओर
आत्मीयता-सा उजला दूध
एक ओर प्रहान था
दूसरी ओर प्यान

सर्प को
अवतत: अपने हौंसले पड़े थामने
कैसा लगता है
जब चनम हिंसा
और पनम अहिंसा
होते हैं आमने-सामने



भौंचक्का था चण्डकौशिक का क्रोध
महावीर बोले—
“सर्पनाज !
बोध पाओ
बोध

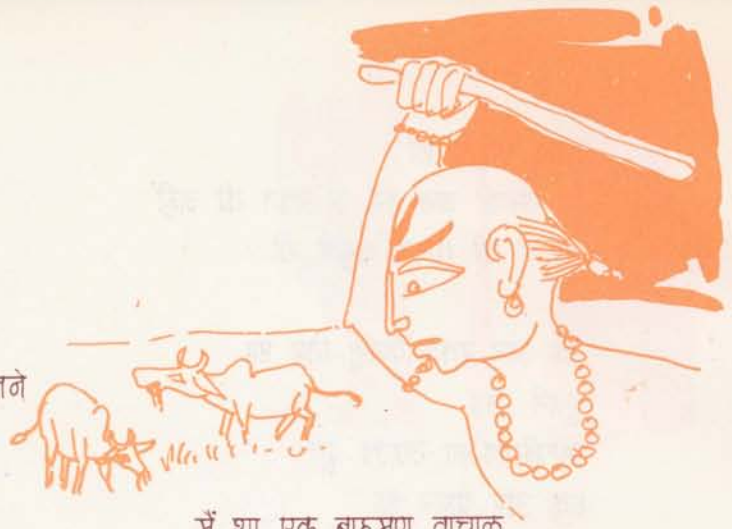


अतीत में जाओ
जा सकते हो जहाँ तक
नवोजो
नवोजो
नवोजो
किस कानन से तुम
पहुँच गये यहाँ तक
तुम्हारी दुर्दशा का दायित्व जिस पन है
क्या उस मूल कानन पन तुम्हारी नज़र है
सोचो
और हटा दो वही मूल अवरोध

सर्पनाज !
बोध पाओ
बोध

चण्डकौशिक ने समझा—
कुछ नहीं है छान-जीत में
अपनी दुर्दशा का मूल कारण नवोजने
वह उतन गया अतीत में

जैसे-जैसे जन्मने लगा ध्यान
वैसे-वैसे कौंधने लगा
जातिभ्रमण ज्ञान...
...नहीं !
सर्प नहीं था मैं
मैं सर्प नहीं था



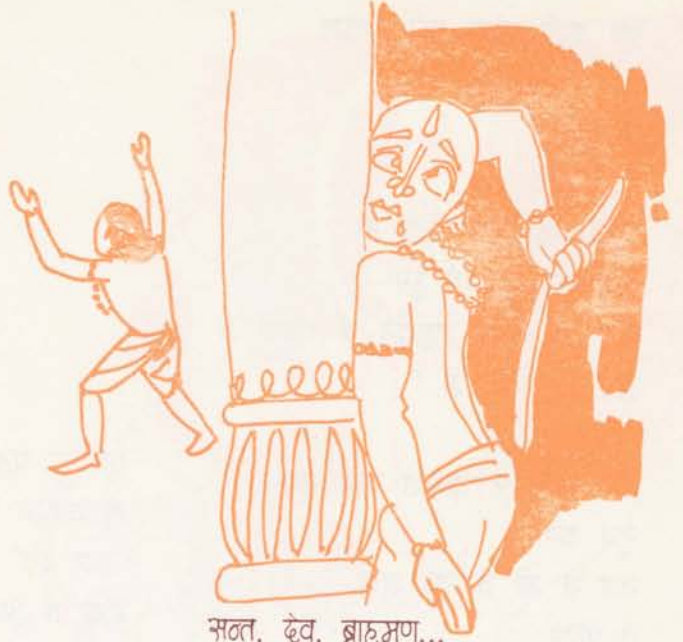
मैं था एक ब्राह्मण वाचाल
हमेशा क्रोध से मुँह लाल
अपने उपवन की कनता ननववाली
एक दिन पशुओं ने चन डाली
हनियाली
उपवन में एक भी फल नहीं छोड़ा
मैंने कुल्हाड़ा उठाया
और एक-एक का नवून पीने छोड़ा

नेत्रों का विवेक नवो गया
वो गहना नडढा नहीं दिनवा मुझे
और मैं उसी में ढेर हो गया

उस से पहले था देव अग्निकुमान
वहाँ भी क्रोध का ही व्यापार

उस से पहले
गोभद्र मुनि नाम का संत
क्रोध का
वहाँ भी नहीं अत
पँव तले कुचला भेंढर
नहीं जिया
उसे देव कन अनदेनवा किया
प्रतिक्रमण के समय

शिष्य ने दिनवाया—
 हिंसा का भय
 बोला—“गुरुदेव !
 ध्यान हीजिये
 पाप हो गया है
 आलोचना कर लीजिये”
 मैंने शिष्य को मानने के लिये
 अपना ढण्ड उठाया
 ढौड़ा
 नेत्रों का विवेक नवो गया
 वो स्वप्ना नहीं दिन्वा
 उस भे टकनाया
 हो गया देहावसान
 वाहू ने !
 क्रोध और मान



भठत, देव, ब्राह्मण...
 ...ब्राह्मण, भठत, देव...
 क्रोध...क्रोध...क्रोध...
 हिंसा...हिंसा...हिंसा...
 देन्वा क्रोध और हिंसा का प्रपंच
 देव और ढनुष्य भे
 बना डाला तिर्यच...



चण्डकौशिक ने
 नवोज लिया दुर्दशा का मूल कानण
 तत्काल कनने लगा उसका निवानण
 असंनव्य प्राणों के हठता
 फन को भभाल लिया
 उसे
 सीधे बाँबी में डाल दिया
 किया संकल्प—
 वेदना अब अधिक हो या अल्प
 अब किन्नी को नहीं सतायेगा
 नहीं डनायेगा
 अपनी कननी पन पछतायेगा

ये फल

अब कभी बाह्य नहीं आयेगा

उधन

गवाल-बाल

पहुँचे भय लिये दिल में

देख कर आश्चर्य हुए—

साँप का शरीर महावीर के चरणों में

और मुँह बिल में !

गाँव वालों से कृतवत कहा गया

सुन कर

उन से भी न रहा गया

वे पहुँचे

तब तक जा चुके थे महावीर

उसी तरह पड़ा था

सर्प का शरीर

जब सभी आश्चर्यत हो गये

कि यह अब किसी को कुछ नहीं कहेगा

यूँ ही



चुपचाप पड़ा रहेगा

तो उन्होंने उसे

'नाग देव' मानकर पूजा शुरू कर दी

बाँबी के आसपास की जगह

दूध, दही, घी, आदि से भन दी

उनकी गंध से वज्रमुनवी चीटियाँ आने लगीं

सर्प को गोचने-काटने-नवाने लगीं

असह्य वेदना ने उसे

पल-पल आहत किया

पर महावीर के जगाये जागा था वह

उसने कभी झूलकर भी

क्रोध को कष्ट नहीं दिया

हनु निश्चिंता में सम-भाव

हनु निश्चिंता में दया

कर्में की होती रही निर्जना

देह विसर्जित कर

वह 'सहस्रान' नामक देवलोक में गया

सचमुच !

साधना की सीप में पलता है

मुक्ति का मोती

ज्ञान की कृपा हो जाये

तो आत्म-कल्याण में देन नहीं होती ।

झामा ने धारण की देह

साधना
महावीर की थी

देवलोक तक
प्रकाश-सी प्रमानित हो गई
धन्य हुआ इच्छ गुणगान से
पन संगम देव के मन में जागे
ईर्ष्या व शंका के विषधन
सोचा—
'निर्णय तो होना चाहिये देव-पनन कन
यह क्या
कि देवशक्ति को अपमानित कनने की ठान लें
मनुष्य को
यूँ ही महान् मान लें'

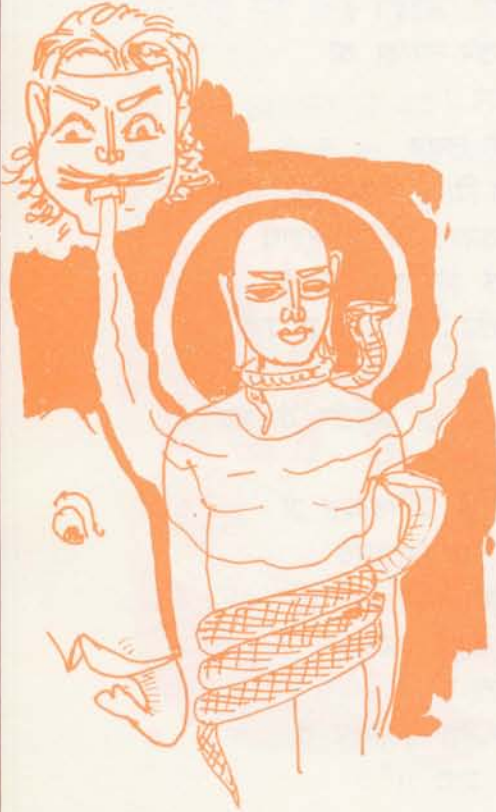
चल दिया भुविधा-पोषित अहकान
देवने—



कितना मजबूत है
महावीर-साधना का
आधान !

पहले उसने
माता-पिता, भाई-भाभी, पत्नी-पुत्री
के करुण कठकन सुनाये
सबके मोहाकुल विलाप
महावीर को हिला न पाये
नाग का लेश-मात्र
शेष न था महावीर के मन में
अर्घ तो था
इच्छ के अभिनन्दन में
हान गई अत्सनाये
मोहित कनने आई थीं
पन कहने लगीं—
“चलो !
काम-जेता महावीर के
गुण गायें !!”

फिन उसने चलाई तेज हुवा
 पन महावीन को छू कन
 वह बन गई
 कई नोगों की द्वा
 फिन चलाई आधी
 धूल-भनी काली
 महावीन धूल के ढेर में लगभग दब गये
 पन कौन कहे कि उहोंने
 पलकें झपका ली
 फिन विषैली चींटियों का दल
 छा गया पूने शनीन पन
 देह के नाम-नोम पन यातनाओं का न्याह नंग
 पन मजाल कि जना-भी आँच आई हो



भाधक महावीन पन
 फिन आये मच्छन
 वे भी हान गये काट-काट कन
 फिन छिमकों का आक्रमण कनाया
 उनके नीचे छिप गई महावीन की काया
 फिन बिच्छुओं
 फिन भौंपों
 फिन हाथियों के प्रहान
 अंततः बेकान

अहकान
 अपनी हान
 छुँ ही नहीं कनता नवीकान
 संगम पुनः तैयान

महावीर गये जहाँ-जहाँ
 उसने स्वयं को
 उनका शिष्य प्रचानित किया वहाँ-वहाँ
 चोनियों की
 लोगों को बताया
 अपनाधों का आदेशदाता महावीर को बताया
 लोग नोष से भने
 उनके पास आये
 तनहू-तनहू से भौँति-भौँति के
 भन्नास पहुँचाये
 पर महावीर की दृष्टि थी व्यानी
 उन्होंने संगम को माना
 कर्म-निर्जना कनाने वाला उपकारी



तोसली में
 नाजप्रासाद के ताले
 संगम ने तोड़ डाले
 ताले तोड़ने के शस्त्रों को
 महावीर के ध्यान-साधना-क्षेत्र में छिपाया
 गुप्तचरों को बताया

महावीर बना लिये गये बंदी
 तब भी ज्यों की त्यों रही
 साधना की बुलंदी
 महावीर से पूछा गया—
 “अपनाधी कौन ?”
 महावीर ध्यानस्थ...मौन
 पौंसी का आदेश हो गया
 पल-भन को तो
 संगम भुवनसागन में नवो गया

महावीर को
 पौंसी के तन्वते पन खड़ा किया गया
 गले में पौंसी का फल
 डाल कर नवीच दिया गया
 किसी ने नहीं देखा इधन-उधन
 तन्वता हटा
 नरुसी टूटी
 महावीर
 ज्यों के त्यों ज़मीन पन

पुनः पौंसी ही गई
 पणिणाम फिन वही
 उठें
 पौंसी ही गई सात बान
 पन मिनाशा का सठनाटा बनकनान



संगम फिन भी नहीं हुआ हताश
 उसने अनुकूल व प्रतिकूल पनीषहों के
 नये-नये उपाय किए तलाश
 वह
 छाया-भा लगा नहा उन के भंग-भंग
 तप के पूर्ण होने पन जब कभी
 आता पानणे का प्रसंग
 तो कोई न कोई उपद्रव कर देता
 कभी मिश्रु बन नवय मांगने आ जाता
 कभी देय वस्तु में
 भक्ति वस्तु भन देता
 महावीर लौट जाते
 ध्यान व तप की साधना में
 पुनः पुनः
 भान-तत्त्व पाते

सान-तत्व पाते
 बहुत दिन इसी तरह बीते
 पनवतु संगम के उपद्व
 नहीं जीते

फिर भी उसने हान नहीं मानी
 ग्वाल के रूप में
 दूध और चावल लाकर
 नवीन बनाने की ठानी



ध्यानस्थ महावीर के पाँवों के पास...बहुत पास
 लकड़ियों जलाने लगा
 उन पर बनतन ननव नवीन पकाने लगा
 त्वचा जलने लगी
 मींस जलने लगा
 छड्डियाँ सुलगने लगीं
 देह में व्यापने लगी
 मर्मांतक पीड़ा
 पर साधना की शक्ति के लिये
 बड़ी से बड़ी यातना भी थी
 क्रीड़ा

महावीर का मन
 न हिलना था, न हिला
 अनन्त उपसर्ग दिये संगम ने
 पर प्रतिध्वनि-स्वरूप
 कम्पन तक नहीं मिला



अन्ततः उसने न्तुति की
 महावीर-साधना के आधान की
 अपनी पनाजय
 नवीकान की
 माना कि हिंसा का ज्वान जब चढता है
 तो नबूब चढता है
 पन अहिंसा के सामने
 उसे झुकना ही पड़ता है
 संगम जाने से पहले रुका
 महावीर के चरणों में झुका
 कहा—

“मेने मन में
 अब न कोई मान है
 में जान गया—



मनुष्य की साधना-शक्ति
 देव-शक्ति से कहीं ज़्यादा महान् है
 आप धन्य हैं
 साधनामृत से
 अपने व्यक्तित्व को और भरे
 मैंने बड़े दुःख दिये
 हो सके तो मुझे क्षमा करें ।”

संगम ने देखा—
 पहली बान झलकी महावीर के चेहरे पन
 पीड़ा की पनछाई
 नोभावलि सिंहनी
 आँखें तक नम हो आई
 पूछा—
 “भयानक से भयानक कष्ट में भी
 आप अडिग रहे
 अकम्प भाव से नवूनवान पनीषह सहे
 अब में पछता नहा हूँ
 हान मान कन जा नहा हूँ
 अब आप ऐसा कौन-सा दुःख पा गये
 कि जिसकी आँच से आप पिघले
 और आँखों में आँसू आ गये ?”



महावीर ने ठण्डा उच्छ्वास छोड़ा
पहली बार
अपना दीर्घ मौन तोड़ा—
“संगम !

तुमने पनीक्षा लेने के चक्कर में
अनन्त कर्म बांध लिये हैं-हैंस कर
पर ये जब उदय में आयेंगे
तो तुम्हें सतारेंगे कस-कस कर
जब कर्म-फल भोगोगे



तब तुम्हानी सहजशक्ति
किस-किस तरह नीतेगी
तुम पर क्या-क्या बीतेगी
उसी कल्पना-मात्र से मैं सहन उठा हूँ
गहने दुःख से भन उठा हूँ !”

संगम ने सुना
सिन धुना
ग्लान-म्लान चित्त
वह सोच रहा था—
प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्त
प्रायश्चित्त ।

मनुष्यता का सम्मान है नारी

जो हुआ
अवश्यम्भावी था
वत्स देश के राजा शतानीक पन
ज़न-जोरु-जमीन का लालच हावी था
उसने अंग देश के राजा दधिवाहन पन
हमला कर दिया
उसकी राजधानी चम्पा को
नक्तपात और लूटपाट से भन दिया



शतानीक विजयी हो गया
पनाजित दधिवाहन
प्राण बचा कर न जाने कहाँ नवो गया

रूप के लोभी एक नशी ने
लूटपाट करते हुए
दधिवाहन की
पत्नी धानिणी व पुत्री वसुमती को देखा
हृदय पन निवंची वासना की नेनवा
उसने ताड़ा मोंका
दोंनों को
चिकनी-चुपड़ी बातों से दिया धोखा
अपने नद्य में बैठाकर ले चला
बीच जंगल में जाकर नोंका
प्रकट कर दिया मन का पाप
कहा—
“मने हृदय-देश की नानी बनें आप”

सतीत्व की प्रतिमूर्ति थी धानिणी नानी
उसने नशी की बात
किन्ही कीमत पन न मानी
उसे लम्पटता का एक भी अवसन न दिया

अपनी जीभ खींचकर
 स्वयं ही प्राणों का अन्त कर लिया
 बेटी को दिना ही नाह
 वसुमती ने भी निश्चय किया—
 सतीत्व-रक्षा हेतु
 प्राणों की भी नहीं पनवाह

मैं की नाह वह चलने लगी जैसे ही
 डने हुए नथी ने
 उन्ने नोक लिया वैसे ही
 वह समझ गया था सतीत्व का अर्थ
 उसने कहा—“बहिन !
 तुम्हारा भय है व्यर्थ
 नानी के प्राण तो मैं नहीं लौटा सकता
 पन तुम्हें
 अब कुछ नहीं पड़ेगा सहना



मेने धन
 तुम बहिन के पद पन रहना ।”

पनवतु वसुमती यहाँ भी गई ठगी
 उन्ने देनव
 नथी की पत्नी भड़कने लगी
 कहा—“इसी क्षण बाजान जाओ
 इन्ने बेच कर धन लाओ
 वनना कभी मत दिनाना नूनत
 हमें न्त्री की नहीं
 हमें तो है धन की जरूरत”

नथी उन्ने ले गया बाजान
 वहाँ हो नहा था नित्रियों का व्यापान
 देनव कर
 उनका क्रय-विक्रय वस्तु के समान
 वसुमती पनेशान
 कौशाम्बी की गणिका महिषी को

वह देखते ही भा गई
 नहीं से बात की
 और उसे एक लानव स्वर्ण-मुद्रायें दमा गई
 उसे पाकर वह निहाल
 वसुमती ने किया भवाल
 “मुझे तो दानी का काम भी नहीं आता
 आपके घर क्या करना होगा माता ?”



गणिका बोली—
 “वहाँ तुम सुनव से रहना तन कन
 नित्य अनेक पुरुष
 तुम पन व्योक्षण होंगे
 भ्रमन बन कन”

बलात् घसीटे जाने पन
 वसुमती ने शोन मचाया
 तभी वहाँ कोट्याधिपति धनावह आया
 सुन कन वह करुण पुकान
 उसके हृदय में हाहाकान

उसने गणिका से कहा—
 “इस बालिका को छोड़ दें आप
 और पुण्य कमायें”
 गणिका तमक कन बोली—
 “मेरी एक लानव स्वर्ण मुद्रायें ?”



धनावह ने मुद्राओं-भना थैला
 गणिका को दमाया
 वसुमती को बचाया
 कहा—
 “में अपने निःसक्तान होने को सोता था
 मुझे क्या पता था—
 एक दिन में भी वात्सल्य से भन जाऊँगा
 तेने जैसी सुशील बिटिया पाऊँगा”

वसुमती ने बड़े कष्ट उठाये
 पन ऐसा स्नेह पाकर
 आँसू उमड़ आये
 भतीत्व की चूँ बनी बात
 वह भिन झुकाये चल दी
 पिता के साथ

घन पहुँची तब भी
 आँसुओं में तैर रहा था पानी
 उसे देख प्रसन्न हुई मूला सेठानी



वसुमती
 शील की देवी
 नम्रता का प्रतिरूप
 मधुनता की प्रतिमा
 गुणों का अद्याह कूप
 सेवा की सुनमि ऐसी
 जैसे सुगन्ध बसी हो चढने में
 'इसे कहेंगे चढना'
 दोनों ने सोचा मन में

चढना वहीं रहने लगी
 बड़े असमानों से
 धनावह को पिता
 और मूला को मैं कहने लगी

एक दिन मूला के मन में
 विचान जगा
 स्वार्थ
 मसितष्क में घुस कर
 सोचने लगा—
 'यह तो ठीक है



कि हमें मिल गई सलतान
 पन एक तो लड़की
 ऊपन से सुठहन औन जवान
 जाने कब यह मेनी नवुशियाँ बीन ले
 मेने पति को
 फुसलाकन मुझ से छीन ले'

एक दिन धनावह बाहन से आये
 चठ्ठना ने उनके हाथ धुलाये
 तभी मुँह पन आ पड़े उसके लम्बे बाल
 सेठ ने उन्हें सम्भाला
 औन उसकी पीठ पन ननव दिया तत्काल
 मूला ने देखा यह दृश्य
 ईर्या बोली उसके भीतर से—
 'में इसे बनाकन छोड़ूंगी अन्पृश्य
 यह चठ्ठना नहीं
 अंगना बनने की ताक में है
 यह कुलटा यहा नही
 तो मेना सौभाग्य नानव में है'



सेठ तीन दिन के लिये
 बाहन गया एक बान
 सेठानी तो न्वाये बैठी थी नवान
 उसने चठ्ठना के हाथ-पाँव
 हथकड़ी-बेड़ियों में जकड़े
 लम्बे-लम्बे बाल निर्ममता से पकड़े
 औन काट दिये
 एक कपड़ा छोड़ा
 शेष सब वस्त्र-आभूषण उतान लिये
 अपशब्दों का गठ
 उस पन उँडेल दिया
 तलवन की अंधेनी गुफा में उसे धकेल दिया
 ताला लगाया औन पीहन चली गई

चढना एक बान फिन छली गई

तीन दिन तीन रात
भुनव-प्यास-वेढना नही उसके भाद्य
तब सेठ घन आया
सामान उताना
चढना बिटिया को पुकाना
कहीं से न पाया कोई उत्तन
कोशिश कनने पन
भुनाई दिया धीमा-धीमा एक नवन-
“में यहाँ हूँ पिता जी
तलघन के भीतर”

सेठ ने ताला नवोला
बिटिया की दुर्दशा देनव हृदय डोला
साना धैर्य पल-भन में नवोया



फूट-फूट कन नोया

चढना ने चुप कनाया

कहा—

“पिता जी ! तीन दिन से कुछ नहीं नवाया
कुछ नवाने को दो
भुनव के पंजे से जान छूटे
यह आर्त ध्यान दूटे”

जिन घन में दूढता नहीं था

दान का मिलमिला

उसी घन में

अपनी बेटी के लिये

सेठ को उडद के बाकुलों के अलावा

कुछ नहीं मिला

सूप में ननव कन वही दिये

कहा—“में लुहान बुलाता हूँ

तेने बंधन काटने के लिये”

चढना को प्यास लगती थी

तो दौड़ पड़ते थे दाम-दाम्नी
आज वही देहनी पन बैठी
देख नहीं थी उड़क के बाकुले
ओन वे भी बाम्नी



उधन
तपनत महवीन को
आहान देने के लिये
प्रतीक्षाओं के अनेक घट नीत गये थे
अभिग्रह ऐसा था
कि मुँह की ओन हाथ बढाये
पाँच महीने पच्चीस दिन बीत गये थे

उठोने संकल्प लिया था
 अभिग्रह किया था—
 'यदि हो कोई अविवाहित नाजकुमारी
 बेकसून और सदाचानी
 बढी-अवस्था में पड़ी हो
 पौवों में बेड़ी
 हाथों में हथकड़ी हो
 सिन मुण्डा हुआ हो
 नोटी-पानी को तीन दिन से न छुआ हो
 भूप में लिये हो
 उइह के बाकुलों का आहान
 एक पौव देहनी के भीतर
 एक बाहन ननवे कन नहीं हो इतजान
 चेहने पन नवुशी के भाव नवने हों
 और औंनों में औंसू भने हों—
 इन तेनह सयोगों को जब देनवूंगा एक साथ
 तभी भिक्षा के लिये फैलाऊँगा हाथ
 अब्यथा नचता नहूंगा
 तप के असवण्ड अध्याय
 देह रहे या जाय'



इस अभिग्रह में
 एक सव्देश साफ था
 महावीर का तप
 नानी के भोग्य- सामग्री मानने के निवलाफ था
 'नानी मनुष्यता का सम्मान है'
 ऐसा था उनका विचान
 उठे
 पानणा नहीं कनना था
 उठे तो कनना था
 किसी घोन दुर्दशाग्रस्त नानी का उठान
 महापुरुषों का एक-एक कर्म
 भावी समाज-नचना के बीज बोता है
 उनका पलकें झपकना
 और नैन लेंना तक उर्कन होता है

महावीन

असम्भव से पनिग्रह को सम्भव करने चले

चढना जहाँ बैठी थी

वहीं आ निकले

महावीन को देख

चढना नकुशी से नवड़ी हो गई

उसे लगा—

वह नकुद से बड़ी हो गई

जिसे जमाने-भन ने ढुत्काना है

उसे महावीन ने भत्काना है

वे उसके दून तक आये

नोम-नोम में स्वागत की उमंगें

चेहने पर

उसने बाह नकुशी की तंगें



महावीन ने देखा—

असम्भव के सम्भव होने की सम्भावना

यहीं है

पर इसकी

आँसुओं में आँसू नहीं हैं

वापिस मुड़ गये महावीन

चढना अधीन

मन अपने को अभागा कह चला

हृदय का सम्स्त धैर्य

हिचकियों की लहनों के साथ

पलकों के कूल-किनारे तोड़ता बह चला

महावीन एक बान फिर चढना की ओर मुड़े

चढना के धधकते नेत्र

पुनः शीतलता से जा जुड़े

जो असम्भव लगाता था



वही घट गया
अभिग्रह पूर्ण हुआ
कुछाना छँट गया
महावीन ने उससे बाद
कनपात्र बढाया
मनुष्य तो मनुष्य
पशु-पक्षियों और देवी-देवताओं के
नयनों में भी हर्ष भन आया

चच्छना ने आहान नहीं दिया
अपने हाथों से अपनी सबसे बड़ी नुशी छुई
धनावह के घन
देवों दुना नत्नों की बानिशा छुई
चच्छना का भन गया
निकत मन
'अहो वन...अहो वन'
के घोष से गूजने लगे धनती-गगन
भाने के भाने दुःख छूट गये
हथकड़ी-बेड़ियों के बंधन
तड़तड़-तड़तड़



नुबूद टूट गये
अधविश्वानों की...नानी-दुईशा की यह टूटन
धर्म से
पावनता से युक्त हुई
वस्तुतः चच्छना के रूप में
नानी-जाति पनाधीनता से मुक्त हुई

अब तो चच्छना को
सबने पहचाना
सबने सम्मान दिया
पः उसने
महावीन की ही
अनुगामिनी होने का निश्चय किया

धव्य वह तप
धव्य वह ज्ञण
धव्य वह चच्छना
जो महावीन के चरणों में हो गई
वच्छना

केवल वच्छना ।

साधना-ग्रंथ और उपसर्ग का अंतिम अध्याय

अनेक उपसर्ग आये
महावीर की चट्टानी साधना से
लहनों की तरह
टकनाये और लौट गये होकर हताश
जानी नहीं
जानी नहीं केवल ज्ञान की तलाश

होने ही वाला था
तलाश का पूर्णविनाश
महावीर आये छम्मापि ग्राम
साधना में नवो गये
ध्यानलीन हो गये

उजला
और उजला होता गया ज्ञान
तमी अपने बैलों के साथ गुंजना



वहाँ से एक किसान
वह भी
महावीर को ध्यान ननवने के लिये कहकर
बैल छोड़ गया
साधना ग्रंथ में
उपसर्ग का अंतिम अध्याय जोड़ गया

लौटा तो बैल नहीं थे वहाँ
पूछा—“अनिबन्ध वे गये कहाँ ?”
उसने पूछा बान-बान
महावीर का मौन
ज्यों का त्यों बनकरान !

उत्तन न पाकर क्रोध भड़कने लगा
वह बिजलियों की तरह कड़कने लगा—
“मैं पूछे जा रहा हूँ
तू कुछ नहीं बताता है
पर मुझे तो गुर्राओं से भी बुलवाना आता है
बहना है क्या
कान बरह हैं तेरे ?
अभी नवेलता हूँ
जाना हाथ देनव में”



बुद्धि कहीं होती है
 क्रोध के बंधनों में
 वह लकड़ी के दो
 लम्बे-नुकीले टुकड़े ले आया
 और एक-एक कर
 ठोकने लगा महावीर
 के कानों में
 हथौड़े के साथ-साथ
 घोर यातना का क्रम चल रहा था
 पर धन्य है महावीर का ध्यान
 उसे कुछ भी नहीं नवल रहा था

कितना वैद्विष्ट
 और घनीभूत था वह ध्यान
 उनसे दूर
 रह कैसे लेता
 केवल ज्ञान !



किमान
 कानों में कीलें ठोक कर चला गया
 उसके हृदय ज़ना भी नहीं डोला
 कुछ समय बाद
 महावीर ने ध्यान नवोला
 तप के पाने के लिये
 गये जिनभक्त सिद्धार्थ के घन
 उसी समय
 नवनक नामक वैद्य भी था वहीं पर
 उसके
 शरीर व अकृति-विज्ञान ने बताया—
 किसी भयानक शल्य से
 आहत है
 यह तेजस्वी काया

पाने के पश्चात्
 सिद्धार्थ और नवनक औषधि आदि लेकर
 महावीर के पीछे-पीछे
 चल दिये साथ-साथ

महावीर ने ध्यान लगाया उद्यान में

नवनक ने जौंच की
 पाया—
 कीलें ठोंकी गई कान में
 चिमटी से
 दोंनों को निकाला नह-नह कन
 कीलो के भाद्य
 नवून भी निकलने लगा बहु-बहु कन
 कीलें जितनी लम्बी थी
 उतनी ही कड़ी
 उनके बाहन निकलते ही
 नक्त की धानये चल पड़ी



इस सहजशीलता के चरणों में
 नवनक भी झुका
 औषधि का लेप किया
 नक्त रुका

बस !
 यही था अन्तिम उपसर्ग
 इसके बाद समस्त कष्ट नवो गये
 जलम-मरण और भुनव-दुःख दूने वाले
 सभी कर्म
 मूलतः अशेष हो गये

अंतर्ज्ञो से
 महावीर नहे थे विलोक—
 बस !
 अब प्रकट होने ही वाला है
 पूर्ण ज्ञान का आलोक
 आलोक !





प्रकाश-पर्व : महावीर / 111

पूर्णत्व का पत्र शिखर

सब अपने होने पर भार्यक हुए
जंभक ग्राम का भीमाळ प्रदेश
श्यामक कृषक का नवेत
शाल कृष की छँव
ऋजुबालुका नदी का तीन
वैशानव शुक्ला दशमी का दिवस

गोदुहानन में
ध्यानस्थ महावीर
पौँचों ज्ञानेच्छियों पर पूना बस
सब कुछ
पूर्णता के लक्ष्य से संबद्ध
अंतिम संकल्प-
अब अब कोई संकल्प नहीं करना
पूर्णता मिलने तक
इसी ध्यान में जीना-मनना



ज्ञान स्वयंबुद्ध
अंतःकरण पूर्णतः विशुद्ध
न महावीर
न भवति
न वर्धमान
ध्यान
केवल शुक्ल ध्यान
शुक्ल ध्यान
शुक्ल ध्यान

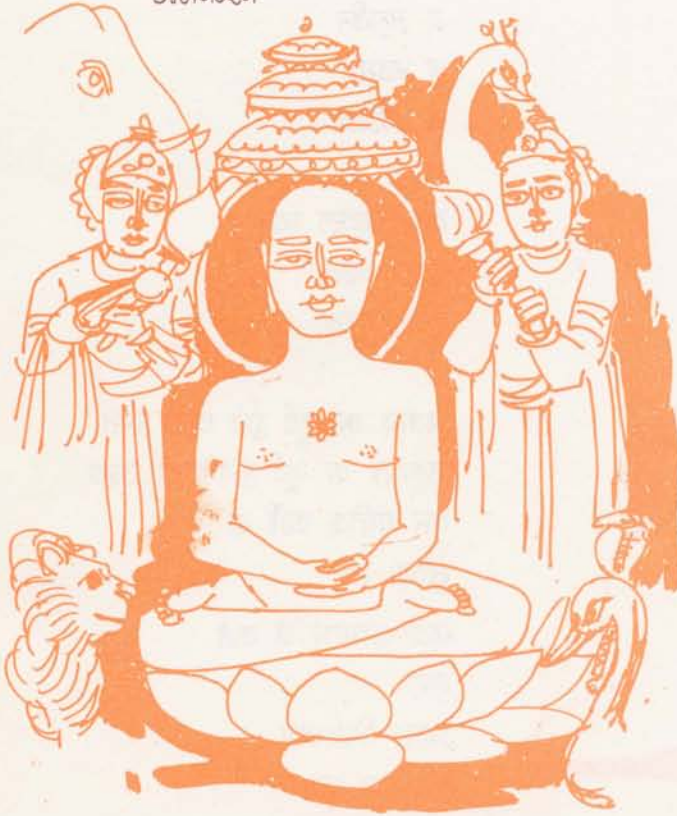


आकाश का सूर्य होने चला अस्त
मनुष्यता का सूर्य होने चला उदय
चान घातिक कर्मों का
मूलतः क्षय
जन्म-जन्मान्त के कर्म
नष्ट
आत्मा निर्मलतम
चन-अचन जग
हस्तामलकवत् न्यष्ट

बढ़े औंनों से भी
तीनों काल
तीनों लोकों का दर्शन
केवल दर्शन
केवल ज्ञान
केवल ज्ञान
केवल ज्ञान का आलोक-वर्षण

पूर्ण
साधना की तलाश
केवल ज्ञान
असीम प्रकाश

द्वेषों दूना कैवल्य महोत्सव
अभिनन्दन



धरत्यू हुआ जग
पूर्णता के पनम शिवन को कन
अनन्त वरुण
अनन्त वरुण
अनन्त वरुण !

महावीर
औनों के

पहले
स्वयं पूर्णता से भने भगवान्
फिन अपूर्णता के
मुक्त-हस्त से बाँटा
पूर्णता का ज्ञान

महावीर थे
औन थी पूर्णता की अखण्ड लय
पावा नगनी
धार्मिक गतिविधियों का केरु थी उन समय
बन कन नौकड़ों सूर्यो के उजियाने
प्रभु वहीं पधाने

देवताओं ने
दिव्य समवशनण नचाया
प्रभु को नुनने
दून-दून से
बच्चा-बच्चा आया



उसी समय सोमिल ब्राह्मण ने
वहाँ एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया था
इच्छभूति गौतम प्रभृति
ग्यानह उद्भूत विद्वानों को
उनके चान हजान चान भौ शिष्यों सहित
निमंत्रण दिया था

यज्ञ में
लानवों के शामिल होने की थी आशा
पनवु साक्षात् ज्ञान-रूप महावीन की
प्रथम देशना के कानण
वह बन गई गिनाशा



सभी दिशाओं से उमड़ते जनसमूह
समवशनण की ओन जाने लगे
देवताओं के विमान स्वयं को
एक-दूसरे से
ठकाने से बचाने लगे
आकाश से
दिव्य पुष्प-वृष्टि होने लगी
व्यापक धर्म-प्रभावना की भृष्टि होने लगी
इच्छभूति गौतम ने भी देना चमत्कन
उठे लगा—
'यह तो हमने अनितत्व को चुनौती है
इसे कनना ही होगा नवीकन
वैदिक संस्कृति के प्रति
जन-जन में नया विश्वास भनना होगा
महावीन को
शास्त्रार्थ में पनाजित कनना होगा
तमी पड़ेगा कुश परक
हमने पास तो
असंख्य हें तर्क
लगाता है—
महावीन ने समग्रोहिनी विद्या का
प्रयोग कन दिया



ओन अपान जनसमूह को
 आकर्षित कर लिया
 जनता कनेगी मृत्यु का संतकन
 जब वह
 शान्त्रार्थ में जायेगा हून'

सोचते हुए इच्छामुक्ति गौतम आदि विद्वान्
 चल दिये महामेन उद्यान
 जैसे-जैसे उद्यान आता गया पास
 कैसे-कैसे
 होता चला गया संशय का छस
 समवधानण को देना
 तो धुंधली पड़ गई आत्मविश्वास की नेना
 प्रभु के दर्शन किये



तो तर्कों का जंजाल नवां गया
 अनुभूत ज्ञान के समुद्र
 पथियों का ज्ञान
 व्यर्थ हो गया
 वह सब मिट गया
 जो मन में ठाना था

प्रभु की वाणी गूंजी—
 "तुम आ गये गौतम !
 तुम्हें तो आ ही जाना था ।"

एक ओन
 ज्ञान-वाणी की अतुलनीय मिठास
 दूसरी ओन
 शुष्क बौद्धिकता का नीनस विलास
 गौतम
 मिठास की धाना में बह गये
 कुछ समय के लिये
 अवाक् रह गये

प्रभु: पनमाया प्रभु ने—
 “अच्छा हुआ
 तुम शीघ्र आ गये यहीं
 तुम्हारे मन में बनसों से एक प्रश्न है—
 आत्मा का अस्तित्व
 सचमुच होता भी है या नहीं ?”

सुनकर गौतम स्तब्ध
 कभी किसी से न कहा गया
 अतनतम का प्रश्न
 महावीर को सहजता से उपलब्ध !
 यह मनुष्य नहीं
 यह तो है साक्षात् ज्ञान

प्रभु ने चुटकियों में कन दिया
 उस प्रश्न का समाधान
 गौतम चकित
 नोम-नोम पुलकित
 कन लिया निश्चय
 अब तो महावीर में ही कन देना है
 स्वयं को विलय

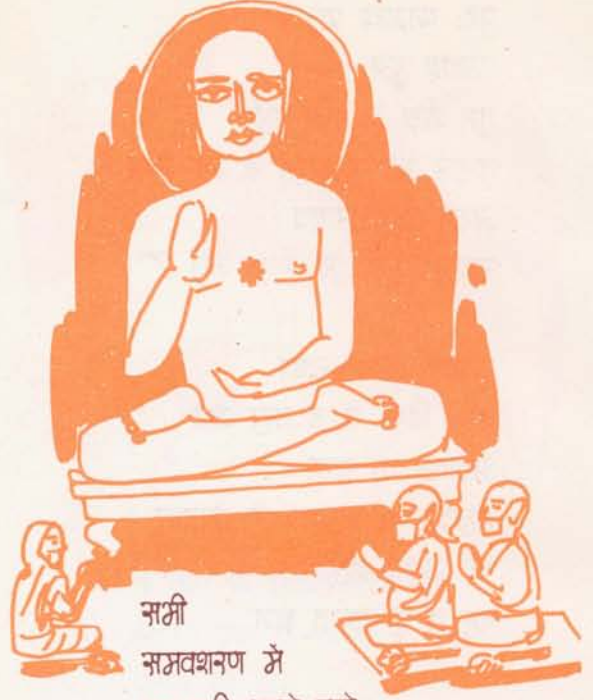


यही हुआ अन्ध सभी विद्वानों के साथ
 अनलता से छँट गई
 अहंकार की नात
 अब
 कोई नहीं था शब्द-जाल से गर्वित
 ग्यानहो विद्वान्
 चान हजान चान सौ शिष्यों सहित
 प्रभु चरणों में समर्पित

मन में साधना का प्रण धन
 इस तरह पहुँचे
 प्रभु के पास
 उनके ग्यानहू गणधन

चढढबाला अक्षय-अनन्त सुख हुई
 वे
 उनके साधवी-संघ की प्रभुसुख हुई

धर्म की आगामी सुव्यवस्था के
 प्रभु ने चान बनाये अंग
 श्रमण, श्रमणी, श्रवक और श्रविका संघ
 उनके धर्म-संघ में
 जाति, वर्ग, आयु और सम्बन्ध जैसे विभाजन
 निरन्तार थे
 साधना की अवधि
 और तप-त्याग ही
 व्युत्पादक सम्मान के आधार थे
 प्रभु ने
 वेदनाओं को हर्ष
 और पतन को उत्कर्ष बनाया
 धर्म-दृष्टि के पैमाने से निरवाया
 पाप-पुण्य को मापना
 तीर्थकर्म महत्वीर ने की
 धर्म-संघ-तीर्थ की स्थापना
 जिसके आलोक से धर्य है आज
 सम्पूर्ण समाज



समी
 समवशनण में
 प्रभु-वाणी सुनने लगे
 अनुभव-निष्कृ-ज्ञान प्रभु-कथन के
 गुणने लगे

प्रभु
 सार्थकता के मोती बिखना रहे थे
 अपने मुनवानविच्छ से
 पनमा रहे थे—
 “भव्य जीवो !
 अपनी उम्र मत बिताओ
 अज्ञान की कनाह में
 तुम्हारे लिये धर्म ही एकमात्र शरण है
 जठम-जना और मनण के
 वेगवान् प्रवाह में
 तुम्हें सुनव-दुःख का मूल नवोना है
 समझ लो !
 ज्ञानी होने का अर्थ
 अहिंसक होना है ।

हिंसा और अहिंसा की तनाजू पन ही
ज्ञान और अज्ञान को तोलो
दूसरों को दुःख देने वाला कठोर
सत्य भी
मत बोलो ।



बीता हुआ समय
कमी लौट कर नहीं आता
जीव
मगुष्य-जठम बान-बान नहीं पाता
कुशा की नोक पन रहने वाले
अन-बिदु के समान
यह जीवन भी है अल्प
शीघ्रातिशीघ्र कनो धर्म का संकल्प ।

देखो !
क्रोध, प्रीति की लय का
अहंकार, विनय का
मित्रता का, माया
और सभी सद्गुणों का, लोभ की छाया
विनाश कर देती है
तन-मन-जीवन में पाप भन देती है ।

संभान के उखन-पूजन का कौटा
बहुत झुझ है
बड़ी कठिनाई से निकलता है
सावधान !
इस कीचड़ में पड़ा साधक
असानी से नहीं सम्भलता है ।

यह पृथ्वी
धन-धान्य-सम्पदा से
पूर्णतः परिपुष्ट
स्वयं समर्पित होकर भी
नहीं कर सकती
लोभी को सत्पुष्ट,
भोग
पतन की अनन्त गहनाइयों तक
ले जाता है
केवल संयम है
जो सच्चा आनन्द दे पाता है ।



काम-भोग
अतृप्ति के कहन हैं
अमृत के वास्ते भी जहन हैं
भोगों की लालसा नवने वाले प्राणी

केवल प्यास पाते हैं
कूर्मति को प्राप्त होते हैं
प्यासे ही मन जाते हैं

गीत सब विलाप हैं
नाट्य सब विडम्बना
और अभिनय सब भ्रम
संसार के सब काम-भोग दुःस्वावह हैं
इन्हें छोड़ने को न हो तैयार ।

मृत्यु का श्रेण
प्राणों के छिनण को
अंत समय उठा ले जाता है
तब सगे से भगा सम्बन्धी भी
किन्हीं का साथ नहीं दे पाता है
संसार मेला है
मनुष्य मूलतः
और अन्ततः अकेला है ।

जो
काम-भोगों को सर्वस्व मान कर चरते हैं
हँसते हैं,
वे जीव मक्खी की तरह



संसार-रूपी कफ (श्लेष्म) में पँसते हैं
आत्मा ही
नरक की वैतनी नहीं
और कूट शालमलि वृक्ष की चुमन है
आत्मा ही
स्वर्ग की कामदुधा धेनु (गौ)
तथा नन्दन-वन है

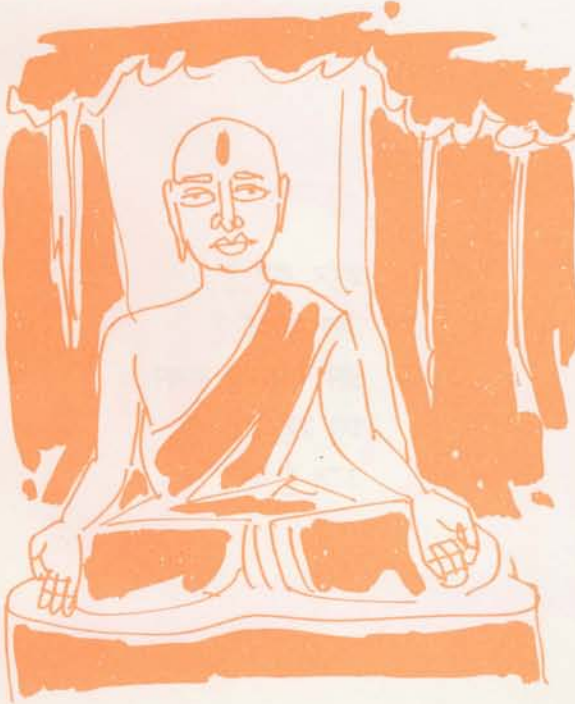
आत्मा का कल्याण
सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चानिद्र से सधेगा
जीव यदि विवेक से चले
विवेक से नवड़ा हो
विवेक से बैठे
विवेक से सोचे
विवेक से भोजन कने
और विवेक से ही बोले
तो पाप कर्म नहीं बंधेगा

कोई कितना ही कठोर तप कने
परन्तु यदि वह मायावी बन छलेगा
तो उसे त्रास
अर्थात्
पुनः-पुनः गर्भवान प्राप्त होगा



सुबह-शाम नहाने से
यदि मोक्ष पाते
तो पानी के सभी जीव मुक्त हो जाते ।

पानी से पाप
धोने जैसे सिद्धांतों से
मुक्ति के द्वार नहीं खुलते
पानी यदि पाप धो सकता
तो पुण्य भी धुलते ।



कोई श्रमण नहीं होता
सिन मुण्डा लेने से
कोई नहीं होता ब्राह्मण
'ओइम्' को नट-नटा लेने से
कोई मुनि नहीं होता
निर्जन वन को घन बना लेने से
कोई नहीं होता तपस्वी
तन पन कुशा के वस्त्र भजा लेने से ।

काम-क्रोध-मान-माया-लोभ
व संनान का त्यागी
ज्ञानी पुरुषों के अप्त वचनों में अनुनागी
भिष्णु कहलाता है
भ्रुवित पाता है ।

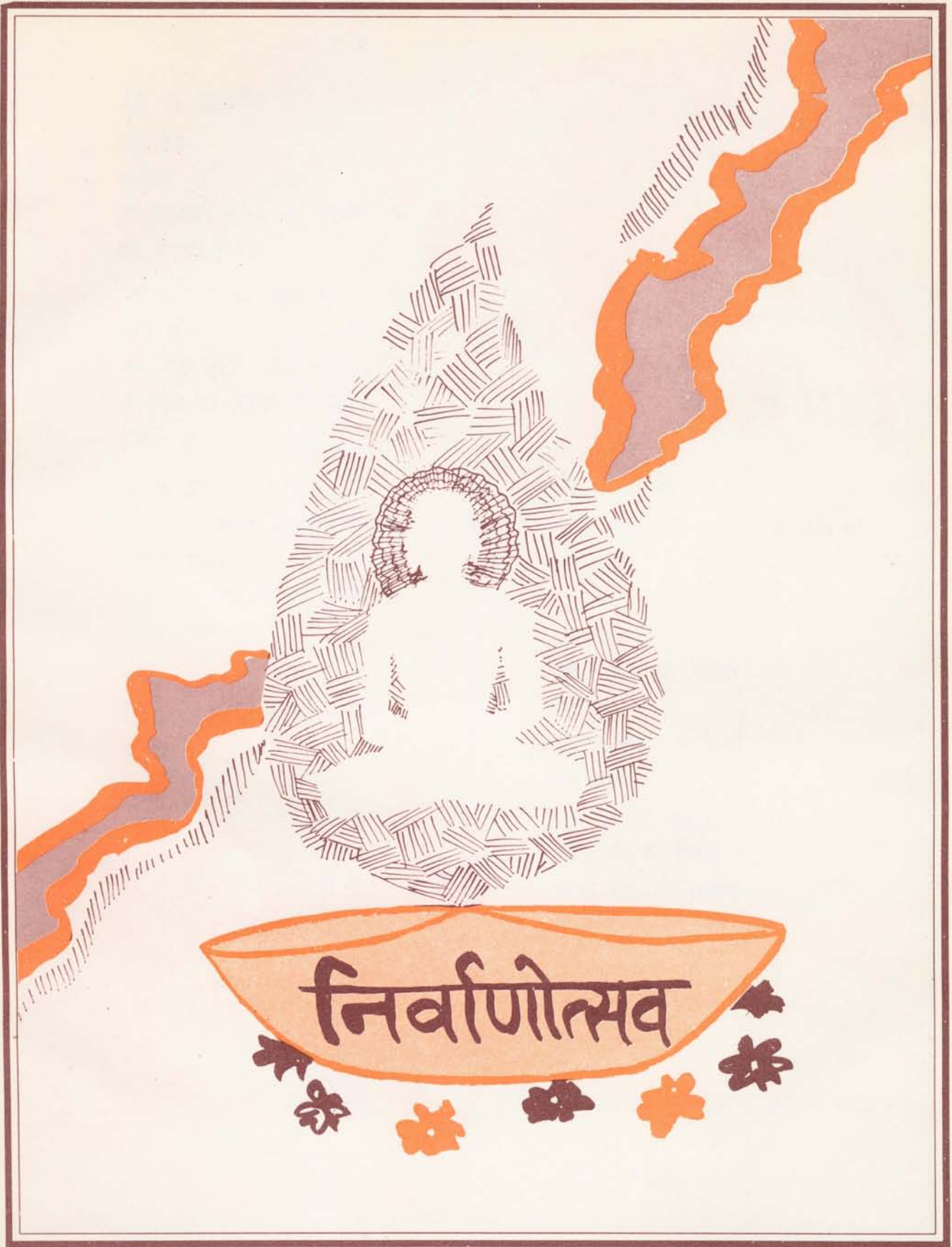


शरीर नाव है
जीव नाविक है
और समुद्र है संनान
इसे मछरिजन
कनते हैं पान ”

प्रभु
जगह-जगह घूम-घूम कर
करते रहे धर्म-चक्र-प्रवर्तन
तीस वर्ष तक
देते रहे जन-जन को
हितकारी शिक्षायें



उनके धर्म-संघ में थे -
चौदह हजार भाधु
छत्तीस हजार साध्वियाँ
एक लाख उन्सठ हजार श्रावक
और
तीन लाख अठानह हजार श्राविकायें
प्रभु पाद प्रणति से
अमृत बोध को पायें ॥



प्रकाश-पर्व : महावीर / 125

देह से देहातीत

प्रभुं जिये

इसलिये

कि भेद-भाव, अधर्म और मिथ्यात्व के
घने से जीव निकलें

उन्हें सत्य का बोध प्राप्त हो

धरती से

साने ससृष्टि सूनवें

तो दुनिया को महावीर का दिया
समाप्त हो

प्रभु की देह

अब भी है असंख्य चेतनाओं के पास

पावापुत्री में था

शान्तिपति श्रमण भगवान् महावीर का

अक्तिम वर्षावास

वहाँ

विधिवत् किमी ने नहीं की जिज्ञासा

पर प्रभु तो



शीतलता का गीन थे

समझ गये-वर्तमान और आगामी जीवों की
ज्ञान-पिपासा

वह शास्त्र की

भोलह प्रहन तक गिनखतन

धर्म की

विनासत वाचना प्रखन की

पिन अक्तिम

उत्तन अध्ययन कछा

जिसमें छंछतीस विनाम

अनखत काल तक आयेकी

वह भव्य जीवों के काम

कहते-कहते वे मौन हो गये

अस्मीम समाधि में

नवो गये

नष्ट हुआ शेष चान अघाति कर्मों का संयोग

मन-वचन-काय का योग

हो गया अयोग

कर्तिक अमावस्या का राघन अधकन
प्रभु
देह से देहातीत
साकन से
गिनाकन

भगवान् महावीन ने
अज्ञान व कर्मों के अधकन मिटाये
इसलिये
देवों ने उन के पनिनिर्वाण की महिमा में
प्रकाशमान नत्न नन्वे
मनुष्यों ने छिपक जलाये



उन महापुरुष का पनिनिर्वाण भी
प्रकाश का महोत्सव बनकन नछा
इसे जन-जन ने
'छिपावली' कहा

हम सबके अधकन का भी
क्षय हो
जय हो
भगवान् महावीन की जय हो ।

जैन साहित्य

डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	उत्तराध्ययन सूत्र	1100.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जीवाजीवाभिगम सूत्र	1500.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जैनधर्म : एक अनुशीलन	600.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जैनधर्म : एक संक्षिप्त इतिहास	300.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जैनधर्म : तत्त्वविद्या एक अनुचिन्तन	200.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जैनधर्म : आचार और संस्कृति	150.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जैन चौबीस तीर्थकर	250.00
डॉ. राजेन्द्र मुनि	:	जैन साहित्य में श्रीकृष्ण	
आचार्य देवेन्द्र मुनि	:	कर्म विज्ञान - 9 भागों में	6000.00
आचार्य देवेन्द्र मुनि	:	जैन दर्शन-एक विश्लेषण	800.00
आचार्य देवेन्द्र मुनि	:	विचार और दर्शन	350.00
आचार्य देवेन्द्र मुनि	:	ब्रह्मचर्य-एक वैज्ञानिक विश्लेषण	600.00
आचार्य देवेन्द्र मुनि	:	धर्म और जीवन	800.00
सुभद्र मुनि	:	तीर्थकर महावीर	500.00
कल्याण सागरजी	:	महामंत्र नवकाण्ड	100.00



: 5430517

यूनिवर्सिटी पाब्लिकेशन

प्रकाशक एवं वितरक

बी-137, कर्म पुरा, नई दिल्ली-110015